पंजाब में जैनधर्म की स्थिति : एक अध्ययन

श्री पुरुषोत्तम जैन, रवीन्द्र जैन*

जैनधर्म विश्व की प्राचीनतम धर्म है। इस बात के तथ्य भारतीय प्राचीन साहित्य में देखे जा सकते हैं। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का कई स्थलों पर उल्लेख है।[1] डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भी माना है। वेदों में जैनों के तीन तीर्थंकर- ऋषभ, अजित व अरिष्टनेमि के प्रमाण मिलते हैं।[2] भगवान् ऋषभदेव का विस्तृत विवरण वैदिक धर्मावलम्बियों के अठारह पुराणों में भी उपलब्ध है।[3] जैनों के अर्हन्,[4] अर्हत्,[5] श्रमण,[6] निर्ग्रन्थ,[7] जिन,[8] जैन[9] जैसे शब्द वैदिक ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर उपलब्ध होते हैं। महर्षि वाल्मीकि की रामायण में 'श्रमण'[10] शब्द का स्पष्टोल्लेख है।

आर्यों के भारत आगमन से पहले जो सभ्यता व संस्कृति सप्तसिन्धु प्रदेश में विकसित हुई, जिसका विनाश आर्यों ने किया; वह श्रमण संस्कृति थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता में इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। इस सभ्यता के श्रमण जात-पात, अस्पृश्यता, वेद, यज्ञ या ब्राह्मणवाद के विरोधी थे। आर्यों ने इनको दस्युदास व असुर जैसे शब्दों से अलंकृत किया। असुरों को पुराणों में श्रमण या अर्हत् धर्म का माननेवाला बताया गया है। वेदों में व्रात्य व वातरशना शब्द जैन श्रमणों के लिए प्रयुक्त किया गया है। इस बात की साक्षी भागवत पुराण में भगवान् ऋषभदेव के जीवन-चरित्र में देखी जा सकती है, जहाँ उनके नाम के साथ श्रमण या वातरशना शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्रमणों के बहुत से प्राचीन भेद जैन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, जिनमें प्रमुख हैं- (1) निर्ग्रन्थ, (2) शाक्य, (3) गेरुक, (4) तापस, (5) नियतिवादी। वर्तमानकाल में श्रमणों के दो ही सम्प्रदाय निर्ग्रन्थ (जैन) या शाक्य (बौद्ध) उपलब्ध हैं। नियतिवाद (आजीवक) समाप्त हो चुका है। बाकी सम्प्रदाय वैदिक संस्कृति में विलीन हो गये हैं। श्रमण संस्कृति ने अपने विचारों से या दार्शनिक परम्पराओं से उपनिषद् या गीतादर्शन को प्रभावित किया है। अहिंसा आदि महाव्रतों को पतंजलि ने अपने योगदर्शन में पाँच यम के रूप में स्वीकार किया है। आज जब भी अहिंसा की बात होती है समस्त विश्व का ध्यान श्रमण संस्कृति की ओर ही जाता है।

जैन श्रमण-परम्परा में तीर्थंकरों का विशिष्ट स्थान है। तीर्थंकर पद शाश्वत व अनादि है। यह आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा का नाम है। तीर्थंकर का अर्थ ही यही

---

* मालेर कोटला, पंजाब।

है कि जो धर्मरूपी शाश्वत तीर्थ की स्थापना करे। तीर्थ के चार भाग हैं- साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। जैन परम्परा के ये चार शाश्वत स्तम्भ हैं।

हमारे देश में इतिहास लिखने की परत्परा नहीं रही। भारत में जो भी इतिहास विभिन्न धर्मों का लिखा गया है उसका मूल स्रोत बौद्ध साहित्य या विदेशी विद्वान् हैं। इस कारण से जैन परम्परा का इस सप्तसिन्धु प्रदेश (प्राचीन पंजाब) से कितना प्राचीन रिश्ता है, इसका उल्लेख किसी भी विद्वान् ने करने की चेष्टा नहीं की है। प्रस्तुत निबन्ध में हम प्राचीन जैन साहित्य, पट्टावलियों, शिलालेख, पुरातत्त्व के माध्यम से प्राचीन सप्तसिन्धु प्रदेश में जैन संस्कृति के रूप का उल्लेख करेंगे। हमारा निबन्ध ऐतिहासिक संदर्भों पर निर्भर है। विद्वानों को हमारा निमन्त्रण है कि "हमारे इस प्रयास को खुले दृष्टिकोण से लें।"

प्राचीन पंजाब की सीमा

सर्वप्रथम हमें यह जानना जरूरी है कि पंजाब की कभी कोई पक्की सीमा नहीं रही है। वर्तमान पंजाब नाम मुस्लिम शासकों द्वारा प्रदान किया गया है। ईस्वी सन् 1947 से पहले पेशावर से देहली तक का क्षेत्र पंजाब माना जाता था। पंजाबी सूबा 1966 में बना और पंजाब से हरियाणा, हिमाचल के क्षेत्र अलग हो गये। हम प्राचीन ग्रन्थों से ही पंजाब की सीमा निर्धारित कर सकते हैं। वेदों में इस क्षेत्र का नाम सप्तसिन्धु प्रदेश है। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार इसके पूर्व में गंगा-यमुना के क्षेत्र सम्मिलित थे जिसकी संज्ञा ब्रह्म देश थी जिसमें कुरुक्षेत्र तक का क्षेत्र शामिल था।

ऋग्वेद में सप्तसिन्धु प्रदेश की सीमायें इस तरह मिलती हैं- पश्चिम की ओर कुम्भा (काबुल), क्रम (कुरम), गोमत (गोमल), सुवास्तु (स्वात) नदियाँ हैं। उस समय वर्तमान अफगानिस्तान भारतवर्ष का अंग था। उसके बाद कई स्थानों पर पाँच नदियों का उल्लेख है। सिन्धु (सिन्धु), वितस्ता (झेलम), असिकनी (झनाव), परुष्णी (इरावती या रावी), विपासा (व्यास) और शत्रुदी (सतलुज)। इनके साथ सरस्वती, यमुना व गंगा का उल्लेख भी है।[11]

पाणिनी ने पंजाब के कुछ क्षेत्रों के उल्लेख में सिन्धु,[12] तक्षशिला,[13] स्वातनदी का प्रदेश शामिल किया है। इसके साथ केकय,[14] गंधार[15], कम्बोज,[16] मद्र,[17] कुरु,[18] योधेय[19] जनपदों का उल्लेख है।

बोधायन के धर्मसूत्र में सोविर, आरठ (अटक) का वर्णन आया है।

बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय (1/2/31), 4/152, 256, 260 में कुरव, कम्बोज, गंधार क्षेत्र का उल्लेख है।

जैन ग्रन्थों में भौगोलिक प्रकरण

जैन आगमों में भगवान् महावीर का 25½ आर्य देशों में धर्म-प्रचार करने का वर्णन है, जिनके नाम हैं- मगध, अंग, बंग, कलिंग, काशी, कौशल, कुरु, कुशति, पंचाल, जांगल, सौराष्ट्र, विदेह, वत्स, शांडिल्य, मलय, मत्स्य, अत्सव, दशार्ण, चेदी, सिन्धु, सौवीर, शूरसेन, भंगी, वर्त, कुणाल, लाट, अर्ध-केकय। इनमें 16 महाराज्य थे, 3 गणराज्य थे। बाकी एकतन्त्र राज्य प्रणाली में राजा के अधीन थे।

जैन आगम उत्तराध्ययनसूत्र में गंधार के राजा नग्गति द्वारा जैन दीक्षा ग्रहण करने का प्राचीन वर्णन है। इस बात से वहाँ जैनधर्म की स्थिति का पता चलता है। प्रश्नव्याकरणसूत्र में आर्यों व अनार्य देशों का विवरण है। आर्य देश का अर्थ है- वह क्षेत्र जहाँ के लोगों को धर्म में रुचि है, जहाँ साधुओं को शुद्ध आहार पानी उपलब्ध हो ऐसे क्षेत्रों में साधुओं को घूमने की आज्ञा प्रज्ञापनासूत्र में भगवान् महावीर ने दी है। यह सब संयम की रक्षा के लिए कहा गया है। यह सीमा अर्ध-कैकय देश तक है, जिसमें सिन्धु, सौवीर, शूर व अर्ध-कैकय देश आता है। अर्ध-कैकय देश के दो भाग थे- एक भाग अफगानिस्तान से आगे जाता था तथा दूसरे भाग में सीमा के एक ओर झेलम नदी व वर्तमान स्यालकोट का भाग था। इस तरह उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में रहा हस्तिनापुर कुरु देश की राजधानी था। इसकी सीमा वर्तमान थानेश्वर (थूणाक सन्निवेश) तक थी जो अम्बाला, सहारनपुर, यमुनानगर का क्षेत्र था। सिन्धु, सौवीर का सारा क्षेत्र पाकिस्तान में पड़ता है जिसकी राजधानी वीतभय पत्तन (भेरा) थी।

प्रश्नव्याकरणसूत्र में अनार्य देशों के नाम अंकित हैं जिनमें अफ्रीका, ईरान, चीन, लहासा (तिब्बत), अरूस (रूस), अरब, यूनान, रोम को अनार्य देश में माना है। वर्तमान भारत का दक्षिणी भाग महाराष्ट्र, कर्नाटक भी अनार्य देश माना गया है, पर यह सीमाएँ निश्चित न रह सकीं। आर्य देश अनार्य बन गए हैं तथा अनार्य आर्य बन गए हैं। भारतवर्ष में महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक प्रदेशों में जैनधर्म राजधर्म रहा है। इन प्रदेशों में यह सामान्यजन का धर्म है।[9]

जैन ग्रन्थों में तीर्थंकरों का विचरण व धर्म-प्रचार

प्राचीन जैन आगमों में जैन मुनियों, साध्वियों, तीर्थंकरों के पंजाब में धर्म-प्रचार हेतु भ्रमण का उल्लेख है जिसका वर्तमान इतिहासकारों ने इतिहास लिखते हुए ध्यान नहीं रखा। खेद का विषय है कि जैन इतिहासकार भी इस सन्दर्भ में चुप रहे। परन्तु आगमों में व प्राचीन प्राकृत साहित्य में इसके बारे में विपुल सामग्री उपलब्ध है। इसे एकत्र करने की जरूरत है। एक बात जरूर है कि पंजाब में पुरातत्व सामग्री की कमी है पर उसका अभाव नहीं। हम इसी लेख में आगे पंजाब से प्राप्त पुरातत्व सामग्री का उल्लेख भी करेंगे। पंजाब आक्रमणकारियों का प्रवेश-द्वार रहा है, जिसके कारण वहाँ जैनधर्म सम्बन्धी पुरातत्व सामग्री लुप्त हो गई है। जैन मुनियों का वहाँ आगमन कम रहा, पर ऐसा भी नहीं कि आगमन न रहा हो।

भगवान् ऋषभदेव व पंजाब

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की राजधानी अयोध्या थी। उन्होंने मानव जाति को असि, मसि, कृषि का उपदेश दिया। पुरुषों के लिए 72 कलाएँ व स्त्रियों के लिए 64 कलाओं का उपदेश दिया। उन्हें जैनों ने प्रथम तीर्थंकर माना। वैदिक धर्म-शृंखला में उन्हें अवतार की संज्ञा प्रदान की गई। उनके पिता नाभि तथा माता मरुदेवी थीं। आपकी दो पत्नियाँ-सुनंदा व सुमंगला थीं। आपकी दोनों पत्नियों से भरत, बाहुबलि आदि 100 पुत्र हुए। ब्राह्मी व सुन्दरी आपकी दो पुत्रियाँ थीं। ब्राह्मी से ब्राह्मी लिपि बनी। सुन्दरी बीजगणित में प्रवीण थी। उन्होंने यह शिक्षा अपने पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेव से प्राप्त की थी।

जब भगवान् ऋषभदेव साधु बने, तो उनके साथ उनके 98 पुत्र व 2 पुत्रियों ने भी उनका अनुकरण करते हुए संयम-मार्ग अंगीकार किया। भगवान् ऋषभदेव ने भरत को अयोध्या का राज्य प्रदान किया। बाहुबलि को गंधार व कुरु देश का राज्य प्रदान किया, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। जब भारत चक्रवर्ती बनने की धुन में पृथ्वी को जीतने निकले, तो गन्धार को छोड़ सारा विश्व उनके अधीन था। बाहुबलि का छोटा-सा राज्य भारत की आँखों में खटक रहा था। बाहुबलि शक्तिशाली थे। राजा भरत ने उसे अधीनता स्वीकार करने को कहा।

बाहुबलि ने कहा - "मैं अपने पिता द्वारा दिया राज्य भोग रहा हूँ। मैं इक्ष्वाकु कुल का क्षत्रिय हूँ। तुम्हें राज्य चाहिए तो इसका फैसला युद्ध क्षेत्र में होगा।" भरत ने युद्ध-निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दोनों की तरफ की सेनाएँ तक्षशिला के क्षेत्र में आमने-सामने आ गईं। बुद्धिमान मन्त्रियों की सूझ-बूझ से सैनिक युद्ध तो टल गया पर एक अहिंसक युद्ध की रचना की गई-बाहु-युद्ध, मल्ल-युद्ध, दृष्टि-युद्ध आदि।

भरत सभी युद्धों में अपने छोटे भाई से हार गए। फिर चालाकी से उन्होंने अपना चक्रवर्ती का चक्र छोड़ा, वह भी बेकार गया। बाहुबलि को अपने भाई के इस कपट भरे व्यवहार से ठेस लगी। यह ठेस वैराग्य का कारण बन गई। उसी युद्ध-स्थल को उन्होंने धर्म-स्थल में बदल दिया। बाहुबलि को मन में अभिमान होने के कारण सर्वज्ञता प्राप्त न हो सकी। उनकी साध्वी बहनें ब्राह्मी तथा सुन्दरी अपने भ्राता भरत के साथ पधारीं जहाँ भाई बाहुबली तप कर रहे थे। दोनों बहनों ने अपने भाई को अहंकाररूपी हाथी से उतरने का उपदेश दिया। भरत जैसे चक्रवर्ती ने शीश झुकाया, तभी इसी क्षेत्र में बाहुबलि मुनि को केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। बाहुबलि की घटना ऋषभदेव प्रभु के केवलज्ञान के कुछ समय बाद घटी। आगे चलकर इनके पुत्र श्रेयांस ने हस्तिनापुर को राजधानी बनाया। जहाँ भगवान् ऋषभदेव एक वर्ष के पश्चात् प्रथम भोजनदान इक्षु रस का लाभ श्रेयांस ने किया। भगवान् ऋषभदेव जहाँ इस युग के प्रथम राजा, प्रथम भिक्षु, प्रथम अरिहंत तीर्थंकर थे वहाँ श्रेयांसकुमार प्रथम दानी बना। इस तरह प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर तक यह क्षेत्र धर्म का क्षेत्र रहा, जहाँ हजारों साधु-साध्वियाँ धर्म-प्रचार हेतु भ्रमण करते थे। भगवान् ऋषभदेव के बाद सभी का निर्वाण-स्थल कैलाश पर्वत है। पर उनके कश्मीर क्षेत्र में भ्रमण करने के प्रबल प्रमाण उपलब्ध हैं। कश्मीर के राज्य-परिवारों पर भी जैनधर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। ऐसा कल्हणकृत राजतरंगिणी से ज्ञात होता है। इसी कुरु देश की हस्तिनापुर नगरी में सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शांतिनाथ जी, सत्रहवें तीर्थंकर भगवान् कुंथुनाथ जी, अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ जी का जन्म हुआ, जिन्होंने चक्रवर्ती बनकर विश्व के भूखण्डों को जीता। फिर वह साधु बनकर इन्द्रिय-विजेता बने। उनके साधु-साध्वियों ने यहाँ के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार किया। यहीं विष्णुमार मुनि ने 500 मुनियों का उपसर्ग दूर किया। उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान् मल्लीनाथ व तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के इन क्षेत्रों में धर्म-प्रचार हेतु घूमने के व्यापक प्रमाण श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं। इन क्षेत्रों में जालंधर, कुरु, गंधार, कश्मीर के क्षेत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भगवान् महावीर और पंजाब

जैनधर्म के अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर चौबीसवें धर्म-प्रवर्तक माने जाते हैं। जैनेतर लोग तो इन्हें ही जैनधर्म का संस्थापक मानते हैं पर ऐसी बात नहीं है। जैनधर्म में चौबीस तीर्थंकरों की लम्बी व शाश्वत-परम्परा है। भगवान् महावीर तो इस परम्परा की अंतिम कड़ी थे।

डॉ. हर्मन जैकोबी ने भगवान् महावीर के बारे में फैली सभी भ्रान्त धारणाओं का खण्डन करके यह बताया कि जैनधर्म एक स्वतंत्र धर्म है। भगवान् महावीर से 250 वर्ष पहले भगवान् पार्श्वनाथ काशी-नरेश राजा अश्वसेन व माता वामादेवी के यहाँ पैदा होकर हठयोग के विरुद्ध अच्छा अभियान चला चुके थे। भगवान् महावीर के समय इसी परम्परा के अनेकों साधु, साध्वियाँ, श्रावक, श्राविकाओं का स्पष्ट उल्लेख पंचम अंग भगवतीसूत्र की कथाओं में उपलब्ध है। भगवान् अजितनाथ से भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा में चार महाव्रत थे- (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, और (4) अपरिग्रह। अपरिग्रह में जड़ व चेतन दोनों प्रकार के परिग्रह की सीमा निश्चित की जाती थी। श्रमण भगवान् महावीर ने स्त्री सम्बन्धी काम-भोगों को अलग कर ब्रह्मचर्य नामक पंचम महाव्रत साधु जीवन में जोड़ा। श्री उत्तराध्ययनसूत्र के केशी गौतम संवाद में श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य गणधर गौतम ने स्वयं को इसी पार्श्व-परम्परा का अंग बताया है। साथ में इस समय फैली धारणाओं का दोनों परम्पराओं से हमेशा के लिए निराकरण किया है। ज्ञातपुत्र, निर्ग्रन्थ, श्रमण वर्धमान महावीर का जन्म ई. पू. 599 के क्षत्रियकुण्डग्राम-नरेश राजा सिद्धार्थ व चेटक राजा की पुत्री महारानी त्रिशला के यहाँ हुआ। आपके जीवन का इतिहास जैन आगमों आवश्यक चूर्णि, निशीथ भाष्य, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, महावीर चरियं, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में भी उपलब्ध है। महावीर के तपस्वी जीवन का वर्णन आचारांगसूत्र में मिलता है। दार्शनिक चर्चाएँ सूत्रकृतांगसूत्र में मिलती हैं। भगवतीसूत्र, अंतगडदशांगसूत्र, उपासकदशांगसूत्र, निरयावलिका, विपाकसूत्र, अनुत्तरोपपातिकसूत्र, औपपातिकसूत्र, राजप्रश्नीयसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, नंदीसूत्र में श्रमण भगवान् महावीर के बारे में इतिहास-सामग्री उपलब्ध होती है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पाली, राजस्थानी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तेलगू, तमिल, मराठी, पंजाबी, हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, रशियन, उर्दू आदि भाषाओं में भगवान् महावीर पर विपुल मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। बौद्ध आगमों में निर्ग्रन्थ, ज्ञातपुत्र उनके चतुर्याम धर्म की बहुत चर्चा है। श्रमण भगवान् महावीर का विवाह 28 वर्ष की आयु में राजकुमारी यशोदा के साथ हुआ। उनके प्रियदर्शना नामक पुत्री हुई। 30 वर्ष की आयु में संसार के भौतिक-सुखों को त्याग आप श्रमण बने। 12½ वर्ष तक घोर तप किया। पावापुरी में आपका प्रथम व अंतिम उपदेश हुआ। आपका निर्वाण 527 ई. पू. दीपावली के दिन हुआ। दिगम्बर-परम्परा विवाह की परम्परा को नहीं मानती। भगवान् महावीर की विरासत ही आज के जैनधर्म का विकसित रूप है। श्रमण भगवान् महावीर अपने 12½ वर्ष के तपस्वी जीवन में कई बार पंजाब के क्षेत्रों में पधारे थे। वह सर्वप्रथम श्वेताम्बिका नगरी में पधारे। चण्डकौशिक नाग को प्रतिबोध देकर भगवान् उत्तर वाचाला पधारे। नागसेन के घर 15 दिन के उपवास का पारणा किया। उसके बाद श्वेताम्बिका नगरी

में पधारे, जहाँ के सम्राट प्रदेशी राजा ने आपकी वन्दना की। यहाँ हम पूर्व में कह आये हैं कि कैकय देश के दो भाग थे- एक अफगानिस्तान से आगे जाता था। दूसरे भाग की सीमा के एक ओर जेहलम व वर्तमान स्यालकोट का भाग था। भगवान् महावीर इसी दूसरे भाग में पधारे थे। ऐसी पंजाबी जैनों की भी मान्यता है। स्यालकोट को पंजाबी जैन श्वेताम्बिका नगरी ही मानते हैं, जो कि अर्ध-कैकय देश की राजधानी थी। यह क्षेत्र पाकिस्तान बनने तक जैन जनसंख्या का क्षेत्र था। वर्तमान विद्वानों का अर्ध-कैकय क्षेत्र हमारी मान्यता के अनुकूल नहीं। एक देश का एक भाग तो अफगानिस्तान की ओर तथा दूसरा नेपाल की सीमा पर। हमारी दृष्टि में भगवान् महावीर ने वर्तमान हरिद्वार, ऋषिकेश क्षेत्र में तपस्या की थी जहाँ अब भी कणखल स्थान है। यह सारा क्षेत्र गंगा तट पर है। क्योंकि आवश्यक चूर्णि (278) में इस प्रकार का पाठ आया है। (8) "कणगखल णाम आसम पदं दो पंथा उज्जुओ च वंको य। जो सो उज्जुओ सो कणगखल मज्झिण वच्चति वंको परिहरंतो-सामी उज्जुएण पधाइतो।" अर्थात् कणखल आश्रम पद को पहुँचने के दो रास्ते थे- एक साफ व सरल तथा दूसरा लम्बा। दोनों रास्ते कणखल आश्रम को जाते थे। प्रभु महावीर ने लम्बा रास्ता छोड़ा और छोटा रास्ता स्वीकार किया, जहाँ वह उद्यान में पधारे।

यहाँ से आप सुरभिपुर पधारे। यह रास्ता लश्कर, सहारनपुर, यमुनानगर का लगता है। नदियाँ अपने रास्ते बदलती रहती हैं। जो गंगा कभी हस्तिनापुर के बीच बहती थी वह वहाँ से 8 किलोमीटर आगे बहती है। वैसे भी विशाल नदी को सिन्धु व गंगा की उपमा भारत में दी जाती है। गंगा की कोई धारा इस क्षेत्र में बहती हो। वर्तमान में भी यहाँ गंगा नदी के साथ यमुना, घग्घर आदि बहती हैं। शायद सरस्वती का प्राचीन नाम ही घग्घर हो। सरस्वती का काफी भाग सूख चुका है।

यहाँ से गंगा पार करने हेतु प्रभु सिद्धदत्त की नाव पर सवार हुए। उल्लू बोलने लगा तो खेमल्ल ज्योतिषी ने कहा ' "बड़ा अपशकुन हुआ है पर इस भिक्षु के कारण हम सब बच जायेंगे।"

ज्योतिषी की वाणी सत्य हुई। गंगा में भयंकर तूफान आया। प्रभु-कृपा से यह उपसर्ग टल गया। नाव पर स्थित होकर प्रभु, स्थूणांक (स्थानेश्वर) सन्निवेश में पधारे। वहाँ ध्यान में मग्न हो गये। जहाँ एक त्योतिषी गंगा की रेत पर पड़े प्रभु के चरण-चिन्हों को पहचानने लगा। उसे लगा यह चरण-चिन्ह किसी चक्रवर्ती के हैं। मुझे लगता है वह संकट में है। मुझे उनकी अब सहायता करनी चाहिए, ताकि वह राजा बनकर हमारा कष्ट दूर कर सकें। वह चिन्हों के सहारे प्रभु के पास पहुँचा। वहाँ खड़े भिक्षु को देखकर उसे अपना सामुद्रिक शास्त्र झूठ लगने लगा। वह उस ग्रंथ को नष्ट ही करने वाला था कि देवेन्द्र प्रकट हुए और कहा- तुम और तुम्हारा ग्रंथ सत्य है। यह तो तीन लोक के चक्रवर्ती हैं, देवों द्वारा पूजित भावी तीर्थंकर हैं। पुण्य ज्योतिषी ने देवाज्ञा स्वीकार कर प्रभु को वन्दना की।[21] यह प्रथम घटना भगवान् महावीर के उत्तरापथ रास्ते से होते हुए पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर तक के पधारने का विवरण है जिसका समर्थन श्री माल पुराण में भी किया गया है।[22]

दूसरा विवरण

भगवान् महावीर के विहार व चातुर्मासों का वर्णन जैसे मुनि श्री कल्याणविजय जी व आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी ने किया है ऐसा किसी विद्वान् ने नहीं किया। हम देखते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर दूसरी बार प्राचीन पंजाब में तब पधारते हैं जब वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर बन चुके हैं। उनके साथ विशाल श्रीसंघ है। आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी द्वारा लिखित 'महावीर : एक अनुशीलन' ग्रंथ, पृष्ठ 449 के अनुसार भगवतीसूत्र में भगवान् महावीर की सिन्धु-सौवीर देश की यात्रा का विस्तृत वर्णन है। वह लिखते हैं -

"राजगृह का वर्षावास समाप्त कर भगवान् (महावीर) ने चम्पा की ओर विहार किया। चम्पा के बाहर पूर्णभद्र नामक यक्ष का यक्षायतन था। भगवान् वहाँ पधारे।" चम्पा का राजा दत्त, रक्तवती रानी, महाचन्द्र नाम का पुत्र था। वह कभी प्रभु के दर्शनार्थ पधारे। महाचन्द्र प्रभु के पास दीक्षित होकर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।[3]

सिन्धु-सौवीर दो देश थे जिसकी विभाजक रेखा सिन्धु नदी थी। दोनों की राजधानी वीतभय पत्तन थी।[4] यहाँ का राजा उदायन व रानी प्रभावती थी। 26 बड़े देश, 363 नगर राजा के अधीन थे। चण्ड प्रद्योतन जैसे 10 मुकुटधारी राजा भी उसके अधीन थे।[5] अभीचिकुमार राजकुमार था व केशीकुमार भानेज था।[6] रानी प्रभावती वैशाली गणराज्य प्रमुख चेटक की पुत्री व श्रमणोपासिका थी।[7] पर उदायन राजा तापसी-परम्परा को मानने वाला था।[8] प्रभावती ने मरने के पश्चात् देवयोनि में जन्म लिया। अपने पति को प्रतिबोध देकर शुद्ध जैनधर्म का श्रावक बनाया।[9]

एक बार राजा उदायन अपनी पौषधशाला में धर्म-आराधना कर रहा था। उसके मन में विचार आया कि "वह नगर, ग्राम धन्य हैं जहाँ प्रभु धर्म उपदेश करते हैं। अगर भगवान् महावीर मेरे देश में पधारें, तो मैं अपने भाजने को राज्य संभालकर साधु बन जाऊँ।"

सर्वज्ञ सर्वदर्शी, प्रभु महावीर ने उदायन के विचारों को जाना। यह रास्ता 700 कोस का था। विहार उग्र था। रास्ते में मरु देश (राजस्थान) पड़ता था जहाँ की भयंकर गर्मी प्रसिद्ध थी। प्रभु ने राजा उदायन पर अनुकम्पा कर अपने जीवन का सबसे लम्बा विहार किया। पानी व भोजन के अभाव के कारण शिष्यों के प्राण संकट में पड़ गये। रास्ते में तिलों की गाड़ियाँ व अचित्त जल मिला। भगवान् ने इस बात को अनुकूल न समझकर साधु-साध्वियों को आहार-पानी लेने से रोक दिया। भगवान् जानते थे कि इस तरह की सुविधा साधु-जीवन के अनुकूल नहीं। इस लम्बे रास्ते में अनेकों मुनि व साध्वियाँ स्वर्ग को प्राप्त हुए।[10]

आगे बढ़ते इन्द्रभूति ने रास्ते में एक बूढ़े किसान को प्रतिबोध देकर साधु बनाया, पर वह प्रभु को देखते ही भाग गया। पूर्व भव में त्रिपुष्ट वासुदेव के रूप में प्रभु ने इस किसान की हत्या की थी। जब वह सिंह के रूप में जनसाधारण को आतंकित कर रहा था। उस समय गणधर गौतम स्वामी का जीव प्रभु का सारथी था। त्रिपृष्ट वासुदेव ने गुफा में जाकर सिंह से युद्ध किया। सिंह वासुदेव से हार गया। उस समय गौतम के जीव ने शेर को सांत्वना देते हुए कहा था- "वनराज! मन में ग्लानि और खेद न करो। तुम्हें मारने वाला साधारण मनुष्य नहीं है। यह राजकुमार त्रिपृष्ट भी नर-सिंह है। अतः सिंह की वीर मृत्यु

एक पर-सिंह से हुई है। तुम शोक मत करो।"[1] इस सान्त्वना भरे वाक्य ने ही सिंह के मन में गौतम को जीवन में प्रेम उत्पन्न कर दिया और मारने वाले के प्रति क्रोध।

अतः भगवान् महावीर वीतभय पत्तन नगर पधारे। राजा, प्रजा ने धर्म उपदेश सुना। धर्म उपदेश सुनकर राजा उदायन ने केशी को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। लम्बी तपस्या ग्रहण की। लम्बी तपस्या के कारण उदायन मुनि बीमार पड़ गये। वैद्यों ने उन्हें दही के सेवन की सलाह दी।

राजऋषि घूमते-फिरते फिर वीतभय नगर पधारे। केशी राजा के मंत्रियों ने इसे राज्य विरुद्ध षड्यन्त्र समझा। उन्हें ठहरने के लिए उपयोगी स्थान न मिला। वह एक कुम्हार के यहाँ ठहरे। राजा केशी ने उन्हें विष-मिश्रित भोजन दिया, पर देवी बनी प्रभावती ने अपने देव-बल से उन्हें ठीक कर दिया।

एक बार पुनः उन्हें एक विष-मिश्रित भोजन मिला, जिसे प्रभावती की अनुपस्थिति में ग्रहण किया। इसी अवस्था में उन्हें केवलज्ञान हो गया और वह मोक्ष पधारे।

जब देवी को वीतभय पत्तन नगर के लोगों के इस दुष्कृत्य का पता चला तो उसने एक कुम्हार को छोड़ नगर को धूल में मिला दिया, इसलिए इस नगर का नाम कुम्भकार का खेत पड़ा।[2]

उदायन का पुत्र राज्य न प्राप्त होने के कारण दुःखी हुआ और विद्रोही भावना के कारण मरकर अग्निकुमार असुर बना। राजा उदयन की यह कथा बौद्ध ग्रंथों में कुछ बदलाव से मिलती है, पर वहाँ भी राजा उदयन मगध में दीक्षित होते हैं। निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

यह घटना भगवान् महावीर के सत्रहवें चार्तुमास में घटित हुई जिससे प्रकट होता है कि जैनधर्म को पंजाब में फैलाने स्वयं श्रमण भगवान् महावीर पधारे वह भी इतने कष्ट झेलकर। पंजाबी लोगों ने उनके उपदेश को सुना ही नहीं, उसे जीवन में स्थान भी दिया। यहाँ से वापसी पर भगवान् महावीर मोका (वर्तमान मोगा) नगरी नन्दन चैत्य से होते हुए वाणिज्य ग्राम पधारे थे।[3]

विपाकसूत्र में प्रभु महावीर के रोहीताक (रोहतक) पधारने का वर्णन है। डॉ. जगदीशचन्द्र जैन ने अपनी पुस्तक (प्राचीन जैन तीर्थ) में वर्तमान रोहतक को ही रोहीताक माना है।

यह रास्ता हस्तिनापुर-देहली-कानपुर-बनारस को जाता है।

सिन्धु-सौवीर के बारे में एक घटना जैन ग्रन्थों में और उपलब्ध है। सिन्धु-सौवीर के राजा के पास श्रमण भगवान् महावीर की कुमारावस्था की चन्दन प्रतिमा व रूपवती दासी गुल्लिका थी। मालवा का राजा चण्डप्रद्योत इसे लेना चाहता था। चण्डप्रद्योत ने अपने कार्य व योजना द्वारा दोनों का अपहरण कर लिया जिसके कारण दोनों में युद्ध हुआ। राजा उदायन ने चण्डप्रद्योत को हराकर पिंजरे में डाल दिया। वह विदिशा से वीतभय पत्तन आये। रास्ते में चार्तुमास शुरू हो गया। पयुर्षण पर्व पर दोनों राजाओं में परस्पर क्षमायाचना हुई। राजा उदायन ने चण्डप्रद्योत को जीता हुआ प्रदेश वापस कर दिया।

इन सभी घटनाओं से सिद्ध होता है कि श्रमण भगवान् महावीर पंजाब के

स्यालकोट, मोका (मोगा), हस्तिनापुर, रोहतक, वीतभय पत्तन क्षेत्रों में स्वयं अपने शिष्यों सहित पधारे थे। आज भी इन नगरों में जैनधर्म के चिन्ह किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं।

पंजाब का इतिहास लिखते समय हमारे इतिहासकारों को जैन ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं को आधार बनाने में कोई रुकावट नहीं माननी चाहिए, क्योंकि यह संदर्भ प्रामाणिक व प्राचीन हैं। बौद्ध व वैदिक ग्रन्थों की सामग्री जैनों के प्रति द्वेषभाव से भरी है।

भगवान् महावीर के पश्चात् जैनधर्म

भगवान् महावीर के समय से ही जैनधर्म पंजाब में दूर-दूर तक फैला हुआ था। इसे फैलाने में हस्तिनापुर के राजा शिव राजर्षि व सिन्धु-नरेश उदायन का प्रमुख हाथ रहा। प्रभु महावीर के अन्तिम शिष्य आर्य जम्बू का निर्वाण-स्थल उत्तरापथ पर पड़ने वाली मथुरा नगरी थी जिसमें स्वयं प्रभु महावीर ने पदार्पण किया था। मथुरा का चौरासी स्थल इनका निर्वाण-स्थाल है।

महावीर वि.सं. 60 (ई.पू. 467) में मगध की राजधानी में नन्द साम्राज्य स्थापित हुआ। इस वंश में नवनन्द राजा हुए। महापद्मनन्द के समय (ई.पू. 326) में यूनानी सम्राट् सिकन्दर ने आक्रमण किया। उस समय यूनानियों ने गन्धार, तक्षशिला में निर्ग्रन्थ श्रमणों के धर्म-प्रचार का उल्लेख किया है। यह सारे मुनि पंजाब, सिन्ध व कश्मीर तक फैले हुए थे।

जैन ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त मौर्य के बारे में ऐतिहासिक व प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध है। चन्द्रगुप्त मौर्य के जैन सम्राट् होने में कोई शंका नहीं। उसका राज्य-सिंहासन पर बिठाने वाला चाणक्य बारह व्रतधारी ब्राह्मण जैन तक्षशिला निवासी माना जाता है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी से दीक्षा लेकर श्रवणबेलगोला में समाधिमरण प्राप्त किया। इस वंश में अशोक को छोड़कर सभी राजा जैन थे। सबसे महान् जैन राजा सम्प्रति था, जिसका दूसरा नाम इन्द्रपालित, विगताशोक भी मिलता है। वह ई.पू. 230 में राजगद्दी पर बैठा। उसके धर्म-गुरु आचार्य सुहस्ती थे, जिनकी प्रेरणा से उसने समस्त विश्व में अपने सैनिकों को जैन साधु-वेश पहना दिया और धर्म-प्रचार हेतु भेजा। उसका शासन 50 तक रहा। यह जैनधर्म का स्वर्णकाल था।

कलिंग-नरेश खारवेल भी जैन था। उसका जन्म ई. पू. 190 के लगभग हुआ। पिता बृद्धिराज की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। 14 वर्ष की आयु में वह युवराज बना। 24 वर्ष की आयु में उसका राज्याभिषेक हुआ। उड़ीसा के पुरी जिले में हाथीगुफा के शिलालेख उसके समस्त जीवन पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। इसका प्रारम्भ नवकार मन्त्र के प्रथम दो पदों में होता है।

उसने जैन भिक्षुओं के लिए गुफाएँ बनाईं। मगध से कलिंग जिनकी प्रतिमा वापस लेकर उसे उड़ीसा में स्थापित किया। उसने उत्तरापथ के सभी राजाओं को अधीन किया और अपने साम्राज्य में जैनधर्म को राज्यधर्म घोषित किया।

कुषाणों के समय पश्चिमोत्तर प्रदेशों काबुल, गन्धार तक जैनधर्म फैला हुआ था।

मथुरा के शिलालेखों में अनेक विदेशियों द्वारा जैनधर्म मानने का उल्लेख है। इन शिलालेखों में शक, हूण राजाओं का उल्लेख मिलता है।

हम पहले बता चुके हैं कि 24 तीर्थंकरों में से अधिकांश तीर्थंकर प्राचीन पंजाब में विचरण कर चुके हैं। भगवान् महावीर के बाद जैनधर्म की स्थिति पंजाब में क्या रही? उसके लिए प्राचीन शिलालेख, ग्रन्थ, पट्टावलियाँ, पुरातत्त्व सामग्री को माध्यम बनाना पड़ेगा। हम इस लेख में प्राचीन जैन परम्परा की बात करते हैं न कि वर्तमान (1967) में बने पंजाब की। हमारी यह सुदृढ़ मान्यता है कि प्राचीन पंजाब में जैनधर्म किसी न किसी रूप में रहा है। साम्प्रदायिक दृष्टि से पंजाब में दिगम्बर सम्प्रदाय के सबसे कम प्रमाण हैं। परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय की परम्परा प्राचीन व विशाल है जो प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से शुरू हो जाती है और आज तक चल रही है जिसका वर्णन हम आगे करेंगे।

ऐतिहासिक ग्रन्थों के सन्दर्भ में

अब हम कुछ जैन ऐतिहासिक ग्रन्थों का उल्लेख कर रहे हैं जहाँ जैनधर्म के प्रचार में प्राचीन प्रमाण उपलब्ध हैं जिनमें सर्वप्रथम 'कुवलयमाला' ग्रन्थ को लेते हैं। यह ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है और इसके रचयिता श्री उद्योतन सूरि जी हैं। इनका समय 9वीं शताब्दी है। वह कहते हैं- 'उत्तरापथ में चन्द्रभागा (चिनाव नदी) बहती है। वहाँ तोरमन राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी पव्वेया (जम्मू) थी। उसके राज-गुरु हरिगुप्त थे।' हरिगुप्त का समय छठी शताब्दी का है।

तोरमान विदेशी शासक था। उसने मालवा को जीतकर पव्वेया (जम्मू) को राजधानी बनाया। इसके विस्तृत राज्य में बलोचिस्तान, पंजाब, उत्तर प्रदेश का मथुरा जिला, मध्य प्रदेश में ग्वालियर जिला भी पड़ते थे। इसका पुत्र मेहरकूल ने संवत् 566 में स्यालकोट को नई राजधानी बनाया।

प्रसिद्ध चालुकय-वंशी राजा परमहित कुमारपाल राजा ने जैन आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि जी महाराज की कृपा से राज्य प्राप्त किया था। उसका जन्म सं. 1149 (1092) में हुआ था। पिता श्री त्रिभुवनपाल जी व माता कश्मीरादेवी थीं। कुमारपाल के जीवन के बाद जैन व अजैन अनेकों विद्वानों ने ग्रन्थ की रचना की है जिसमें उनके विस्तृत राज्य, धर्म-प्रचार, तीर्थ यात्राओं, साहित्य निर्माण में सहयोग व जीवदया सम्बन्धी अच्छा वर्णन है।

आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि ने कुमारपाल के राजा होने की भविष्यवाणी की थी। कुमारपाल पहले शैव था। पचास वर्ष की आयु में राजा बना। सं. 1199 में वह पाटन की गद्दी पर बैठा। वह राजा महान् पराक्रमी, पूजा-पाठ में ज्यादा समय बिताने वाला, न्यायप्रिय, प्रजापालक था। राजा बनते ही उसने एक प्राचीन कानून समाप्त किया। उसने सन्तानहीन विधवा की सम्पत्ति को राजा की सम्पत्ति मानने का कानून समाप्त कर दिया। जीवों की रक्षार्थ शिकार पर पूर्ण पाबन्दी लगाई, पशु-बलि समाप्त की। दानशालाएँ, भोजनशालाएँ, मन्दिर निर्माण, प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया।

उसने राजा बनते ही पड़ोस के 18 देशों को जीता। उसके जीवन की घटनाओं का वर्णन स्वयं आचार्य श्री हेमचेन्द्रसूरि ने किया है, आचार्य श्री सोमप्रभसूरि जी महाराज कृत

मोह पराजय नाटक सं. 1232 प्रबन्धकोष, कुमारपाल प्रबन्ध, कुमारपाल चरित्र व अन्य शिलालेखों से राजा कुमारपाल के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।

कर्नल टाम्ज ने लिखा है - कुमारपाल की आज्ञा को समस्त पृथ्वी के राजाओं ने मस्तक पर धारण किया। उसने शाकम्भरी के राजा को झुकाया। सपादलक्ष पर्वत पर चढ़ाई करके वहाँ के राजाओं को जीता। उसका राज्य स्यालकोट तक था। बड़गच्छ के आचार्य श्री विनयचन्द्र जी ने (सं. 1286) में कुमारपाल के राज्य की सीमा में इन प्रदेशों का उल्लेख किया है।

गौड़, कान्यकुब्ज, कोलाक, कलिंग, अंग, बंग, कुरुग, आचाल्य, कामाक्ष, ओष्ठ, पूण्ड्र, उड़ीश, मालव, लोहित, पश्चिम कच्छ, सौराष्ट्र, कुकण, लाट, श्रीमाल, अर्वुद, मेदपाट, भरू, वरेन्द्र, जमुना, गंगातीर, अन्तर्वेदी मगध, मध्य, कुरु, बाहल, कामरूप, काशी, अवन्ती, पापन्तक, किरात, नेपाल, ठक्कर (अटक), तुरुष्ट, ताईकार, बर्बर, जर्जर, काश्मीर, हिमालय, लौहपुरुष, श्रीराष्ट्र व दक्षिण पंथ, सिन्हल, चोल, कौशल, पाडु, आन्ध्र, विन्ध्य, कर्णाट, द्राविड़, श्रीपर्वत, विदर्भ, घाटा, डरलाजी, तापी, महाराष्ट्र, नर्मदा तट, द्वीप शाश्वत।

उसके 18 देशों का एक अन्य उल्लेख इस प्रकार है- (1) गुजरात, (2) लाट, (3) सौराष्ट्र, (4) भम्व भेरी, (5) कच्छ, (6) सिंध, (7) उच्चा (तक्षशिला), (8) जालन्धर (सतलुज नदी का प्रदेश), (9) काशी, (10) सपादलक्ष (अजमेर का सांभर प्रदेश या पाकिस्तान का कटासराज), (11) मेवाड़, (12) मालवा, (13) आभीर, (14) महाराष्ट्र, (15) कर्नाटक, (16) कोंकण, (17) अंतर्वेदी, (18) कुरु। दोनों सूचियों में पंजाब के कुछ प्रदेशों का वर्णन है। स्वयं आचार्य श्री हेमचन्द्र जी महाराज ने 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र' में लिखा है - चोल, कोंकण, भूपिट पूर्व में गंगा नदी का प्रदेश, दक्षिण में विंध्याचल तक का क्षेत्र, पश्चिम में सिन्धु देश एवं उत्तर में तुर्किस्तान को राजा कुमारपाल ने जीता।

अपने विशाल विजय अभियान में वह पहले जाबलपुर आया, फिर सपादलक्ष की ओर बढ़ा। यहाँ का राजा अर्णीराज राजा कुमारपाल का बहनोई था। उसे अधीन कर, वह कुरु देश की राजधानी हस्तिनापुर आया। वापसी पर मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र को जीता, फिर चित्तौढ़ के राजा को झुकाकर अवन्तीपुर पहुँचा। वहाँ से नर्मदा नदी के किनारे पड़ाव डाला।

नर्मदा नदी से सीधा आभीर देश के राजा को हराकर उसे अधीन किया। फिर लाट देश को झुकाता हुआ सौराष्ट्र पहुँचा। वहाँ का राजा कुमारपाल के पहुँचने से पहले भाग गया। फिर कच्छ को जीतकर गुजरात (पंजाब) को नौका से पार कर जीता। फिर कुमारपाल पंजाब के अधिपति से लड़ने सम्मुख आया। कुछ सख्त मुकाबला हुआ। यह क्षेत्र भी कुमारपाल के अधीन हो गया।

मुल्तान के शासक मूलराज को उसने अधीनगी का संदेश भेजा जिसे मूलराज ने ठुकरा दिया। मूलराज विशाल सेना से मैदान में लड़ा, जहाँ वह पराजित हुआ। रास्ते में उसने जालंधर देश व मरु देश को जीता।

इस विवरण से सिद्ध है कि कुमारपाल राजा ने आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि की प्रेरणा से इन क्षेत्रों में जैनधर्म का हर प्रकार से प्रचार किया। उसने चोरी कर्म पर प्रतिबंध लगाया। साधुओं का सम्मान किया। अन्यायी को अपने हाथों से दण्ड दिया। उसने जहाँ जैनधर्म में परमहित पद पाया। वहाँ उसने आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि की प्रेरणा से सोमनाथ मंदिर का भी जीर्णोद्धार कराया। उसका युग जैनधर्म का स्वर्ण युग था। उसने पशुशालाएँ व दानशालाएँ खोलीं। जुएखाने बन्द करवाए। परस्त्रीगामी व वेश्यागामी को दण्ड दिया। राजा ने जैन श्रावक व्रत अंगीकार कर रात्रि-भोजन का त्याग किया। इस युग में आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि ने महान् साहित्य का निर्माण किया। अनेक ग्रन्थ लिखवाये। अनेक शास्त्र भण्डारों का निर्माण किया। अनेक नए मन्दिर बनवाए। तीर्थयात्राओं के संघ निकाले। प्राचीन जिनालयों का जीर्णोद्धार किया। गुजरात के मंत्री वस्तुपाल व तेजपाल द्वारा सं. 1275 से 1303 में काश्मीर, कांगड़ा क्षेत्रों में जैन मन्दिरों के निर्माण का वर्णन मिलता है। इन दोनों भाइयों ने मुल्तान के सूर्य-मन्दिर का निर्माण करवाया। सं. 1312-1315 में गुजराती ओसवालों ने देहली के बादशाह को अकाल से निपटने में अनाज द्वारा सहायता की। मान्यता है कि सं. 1478-1480 में मुबारक शाह के समय हेमचन्द्र देहली का पहला जैन शासक बना। मुहम्मद तुगलक के समय आचार्य जिनप्रभसूरि ने विविध तीर्थकल्प की रचना सम्पूर्ण की थी, जिसमें पंजाब के आसपास के क्षेत्रों के जैन तीर्थों की स्थिति का वर्णन उपलब्ध है।

विज्ञप्ति त्रिवेणी

जैनधर्म में 14-15वीं शताब्दी की स्थिति बताने वाला एक ग्रंथ 'विज्ञप्ति त्रिवेणी' है, जिसकी खोज मुनि श्री जिनविजय जी ने की थी। इसमें कांगड़ा तीर्थ की यात्रा का वर्णन है। सं. 1484 को आचार्य श्री जिनभद्र जी अपने शिष्य जयसागर मेघराज गणि, सत्यरुचि, मतिशील और हेमकुंवर के साथ पधारे थे।

उन्होंने अपनी यात्रा सिन्ध से शुरू की थी। नगर का नाम था मामनवाहन। वहाँ से वह फरीदपुर (पाकपटन-पाकिस्तान) पहुँचे। फरीदपुर के किनारे व्यास नदी थी। वहाँ से चलकर तलपाटन (तलवाड़ा) आए। वहाँ से देवालपुर (दीपालपुर) होते हुए कंगनपुर पहुँचे। वहाँ से हरियाणा (होशियारपुर के पास) आए। इसी श्रीसंघ का प्रमुख श्री सोमा था। वह संघ पांच दिन रहा। छठे दिन नगरकोट (कांगड़ा) पहुँचे। वहाँ का राजा नरेन्द्रचन्द्र था।

वापसी पर श्रीसंघ गोपाचलपुर (गुलेर हिमाचल) पहुँचा। फिर नन्दनपुर (नादौन) होता हुआ कोटिलग्राम (कोटला) आया। यहाँ से 40 महल का रास्ता नावों द्वारा पार किया। 10 दिन धर्म-प्रचार करने के बाद श्रीसंघ पुनः फरीदपुर पहुँचा। वहाँ से पंजाब, सिन्ध में धर्म-प्रचार करता हुआ वापस आया।

उपरोक्त विवरण में पंजाब के प्राचीन मन्दिरों, तीर्थों, श्रावक व श्राविकाओं का सुन्दर चित्रण है।

इसी तरह से सं. 1345 में हरिचन्द ने इस तीर्थ की यात्रा की। सं. 1400, 1422, 1440, 1497, 1700 में अनेकों यात्री इस तीर्थ पर पधारे। आज भी कांगड़ा के किले में भगवान् ऋषभदेव की प्राचीन प्रतिमा विराजमान है।

सं. 1468 में दीवाली के दिन आचार्य श्री वर्धमान सूरि ने 'आचार दिनकर' ग्रंथ की रचना नादौन में की थी। उस समय वहाँ का राजा अनंतपाल था। 17वीं सदी में हुए कवि श्रीमाल ने पंचपुर (वर्तमान पिंजौर) में 52 जैन मन्दिरों की सूचना दी है जिससे प्रकट होता है कि हिमाचल प्रदेश के काफी क्षेत्रों में जैनधर्म प्राचीनकाल से रहा है।

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की सूचना वेद, उपनिषद्, पुराणों में उपलब्ध है। इन ग्रन्थों की रचना सप्तसिन्धु प्रदेश में हुई। इस कारण पंजाब में जनजीवन में जैनधर्म नया नहीं। यहाँ जैनधर्म का हर स्वरूप आया और पनपा। जैनधर्म के विकास में काश्मीर के जैन राजाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस बात की सूचना कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' सं. 1148-1149 में दी है। इन राजाओं ने कुमारपाल की तरह जैनधर्म का प्रचार भारत से बाहर मध्य एशिया तक किया। पंजाब, गंधार, काश्मीर उस समय जैनधर्म के केन्द्र थे। इसमें एक अशोक राजा का वर्णन है, जिसने श्रीनगर की स्थापना की थी जो राजा शकुनि का पड़पोता था। उसने शुष्क क्षेत्र विस्तोतर नाम के नगर को जिन स्तूपों से भर दिया। काश्मीर का एक राजा ललिताद्विय भगवान् महावीर का समकालीन था जिसने बहुत-स जिन चैत्यों, विहारों का निर्माण (4-202) किया।

कलिंग नरेश मेघवाहन के बारे में कल्हण कहता है। महामेघवाहन खारवेल ने काश्मीर, गंधार में राज्य स्थापित किया। पशुबलि बन्द करवाकर अहिंसा धर्म का प्रचार किया। उसने भयंकर नरबलि बन्द करवाई। उसने अनेकों जैन मन्दिरों का निर्माण किया। उसका पुत्र श्रेष्ठसेन था। श्रेष्ठसेन का पुत्र तोरमान व उसका पुत्र प्रवरसेन भी जैन राजा था जिन्होंने अनेक जिन-मन्दिर, विहारों का निर्माण किया। कई तीर्थयात्राएँ भी की थीं।[34]

इसी तरह एक बौद्ध ग्रंथ 'मिलिंद पण्ह' में भिक्षु नागसेन ने सांकलवती (स्यालकोट) में राजा मिलिन्द को जैन निर्ग्रन्थों के बारे में सूचना दी थी। यह ग्रंथ काफी प्राचीन व ऐतिहासिक ग्रंथ है।

पट्टावलियों में पंजाब

जैन इतिहास, परम्परा, साम्प्रदायिक बदलाव को जानने का महत्त्वपूर्ण साधन पट्टावलियाँ हैं। पट्टावलियों का सीधा अर्थ है भगवान् महावीर के बाद की आचार्य परम्परा।

जैन आगमों (नंदीसूत्र) में आचार्य श्री देववाचक की पट्टावली सबसे प्राचीन है। इसमें भगवान् महावीर के बाद हुए आचार्य के नाम का उल्लेख है। इन्हीं आचार्य में श्री लोहिताचार्य का नाम उपलब्ध है। श्री लोहिताचार्य ने अग्रोहा में सं. 19 या 84 में अग्रवालों को जैनधर्म में दीक्षित किया था। अग्रवाल विशुद्ध पंजाबी जाति है जिसकी उत्पत्ति स्थान अग्रोहा है। इस जाति में जैन व हिन्दूधर्म के लोग मिलते हैं पर सारी जाति शाकाहारी है। इसका अर्थ यह है कि भगवान् महावीर के निर्वाण के 584 वर्ष पश्चात् पंजाब के अग्रोहा गणतंत्र में जैनधर्म राज्यधर्म बन चुका था। जैनों के 84 गच्छों में हिसारिया गच्छ इस बात का प्रमाण है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण पट्टावली आचार्य श्रीभद्रबाहु (कल्पसूत्र) की है कि जिसमें अनेकों शाखाओं के नाम उपलब्ध हैं। यह सभी मथुरा के शिलालेखों में उपलब्ध हो जाते

हैं। स्व. पं. हीरालाल जी दुग्गड़ ने अपनी 'मध्य एशिया व पंजाब में जैनधर्म' में लिखा है -

"कल्पसूत्र में वर्णित प्रश्नवाहिका का प्रदेश पेशावर क्षेत्र में था जो गंधार देश में तक्षशिला के नाम से प्रसिद्ध था। आज के 84 गच्छों में गंधारिया गच्छ मिलता है। दूसरी उच्चानगरी की पहचान उन्होंने स्यालकोट जम्मू के क्षेत्रों से की है। राजा सम्प्रति के काल में यहाँ जैन धर्म खूब फैला। चीनी यात्री फाह्यान ने भी इसकी सूचना दी है। गंधारिया गच्छ ने शत्रुंजय पालीताना तीर्थ पर अनेकों मन्दिर व प्रतिमाओं का निर्माण कराया।

पंजाब में हर सम्प्रदाय की पट्टावलियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें प्रमुख सम्प्रदाय स्थानकवासी ही है। खरतरगच्छ व तपागच्छ की पट्टावलियों में उनके आचार्य के नाम उपलब्ध हैं जिन्होंने जैनधर्म के प्रचार में अपना सारा जीवन समर्पित किया। साधु के अतिरिक्त जैन यतियों की अलग परम्परा मिलती है। यदि परम्परा का उल्लेखन 8वीं सदी से मिलना शुरू हो जाता है तो हम इन्हीं पट्टावलियों के आधार से कुछ कड़ियाँ मिलाने की कोशिश करेंगे।

खरतरगच्छ के आचार्य और पंजाब

पंजाब में जैनधर्म का प्रचार करने में खरतरगच्छ के साधु व साध्वियों का प्रमुख हाथ रहा है। इस गच्छ के प्रथम आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि ने यति-परम्परा को त्याग शुद्ध धर्म ग्रहण किया फिर यति श्री वर्धमान सूरि के शिष्यों को देहली में दीक्षित किया था।

आचार्य श्री जिनदत्तसूरि दादागुरु ने हरियाणा, पंजाब क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करके हजारों नये लोगों को जैनधर्म में दीक्षित किया।

आचार्य श्री जिनकुशलसूरि जी दादागुरु का पंजाब, सिन्ध, देहली क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्होंने जैनधर्म तीर्थ पर हिंसा रुकवाने हेतु कुतुबुद्दीन ऐबक से फरमान जारी करवाया। आपका समाधि-स्थल देरवर (सिंध) में है। आपने अपने प्रभाव से लाखों लोगों को जैनधर्म में दीक्षित किया।

प्रसिद्ध जैन तीर्थयात्री आचार्य श्री जिनप्रभसूरि ने 'विविध तीर्थ कल्प' ग्रंथ के अनुसार हस्तिनापुर, देहली, हरियाणा के क्षेत्रों में धर्म-केन्द्र स्थापित किये। आपने जैन साहित्य की रचना भी की थी।

सं. 1376 में लिखी पट्टावली के अनुसार आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि ने कुरुक्षेत्र के राजा मलसिंह, चंपकसेन को मंत्रियों सहित जैनधर्म में दीक्षित किया। आपने राजपुरा, करनाल, माधोपुर में धर्म-प्रचार किया।

इसी तरह दादागुरु श्री जिनदत्तसूरि ने पंजाब की पांचों दरियाओं के पीरों को वश में किया। 1,000 गांवों का स्वामी सिंध देश का सूबेदार श्री अभयसिंह सं. 1198 में जैनधर्म में दीक्षित हुआ। सिंध के लोगों को मांस, शराब की लत छुड़वाई। अनेकों नये कुल व गोत्र स्थापित किये।

सं. 1214 में आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि ने सिन्ध के राजा गोसलसिंह भाटी को 1,500 परिवारों सहित जैनधर्म में दीक्षित किया।

अकबर के समय दादागुरु श्री जिनचन्द्रसूरि सं. 1648 फाल्गुन सदी को 31 साधुओं के साथ लाहौर पधारे। बादशाह की भेंट ठुकराकर उसे जैन मुनि के नियम समझाये। राजा को अहिंसा का उपदेश दिया। राजा ने आचार्यश्री से प्रभावित होकर फरमान जारी किये। काश्मीर विजय पर श्रीनगर में मछली पकड़ने पर पाबन्दी लगाई। शत्रुंजय तीर्थ को कर-मुक्त करवाया। बादशाह सलीम द्वारा जारी जैन मुनियों के विरोधी फरमान को वापस करवाया। आपके साथ 2,000 साधु थे। आप 10-12 साल पंजाब, जम्मू, कश्मीर व हरियाणा में घूमे। पंजाब के हर जैन मन्दिर में दादावाड़ियाँ उपलब्ध हैं। खरतरगच्छ के यतियों के डेरे हैं जो उस गच्छ की प्रसिद्धि व प्राचीनता के प्रतीक हैं।

तपागच्छ

तपागच्छ का जन्म-स्थान गुजरात है। पंजाब में विक्रम की 13वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक इस गच्छ के अनेकों मुनि व यति धर्म-प्रचार करते रहे। मुगल बादशाह बाबर ने दादागुरु श्री आनन्द मेरु को सम्मानित किया। हुमायूँ ने आचार्य श्री पद्मसुन्दर मेरु का सम्मान किया। जिन्होंने संस्कृत में तीन ग्रन्थों की रचना की थी।

इसी गच्छ के आचार्य श्री हरिविजय जी जैनधर्म के प्रभावक आचार्य हुए हैं। सं. 1639 में अकबर ने आपको फतेहपुर सीकरी बुलाया। सं. 1640 में आपको जगद्गुरु व श्री शान्तिचन्द गणि को उपाध्याय-पद प्रदान किया। अकबर के दरबार के 21 सदस्यों में 16वाँ स्थान आपका था। आपने तीन वर्ष अकबर को धर्म उपदेश दिया। उसी समय आप पंजाब, हरियाणा के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार हेतु घूमे।

फिर यह कार्य श्री शान्तिचन्द्र, भानुचन्द्र व सिद्धिचन्द्र गणि ने संभाला। सं. 1649 माघ वदी 5 को अकबर की पुनः प्रार्थना पर आपने अपने शिष्य श्री विजयसेन को भेजा। श्री विजयसेन पहले रिवाड़ी पहुँचे, फिर विक्रमदूर, झझर, साहिनगर, अम्बाला, सरहिन्द, लुधियाना, अमृतसर होते हुए लाहौर पहुँचे। सं. 1650 में बादशाह अकबर व शहजादा सलीम ने लाहौर में आपकी आगवानी की। ईश्वर, गंगा, सूर्य के बारे में 33 ब्राह्मणों के साथ आचार्यश्री का शास्त्रार्थ हुआ। इस अवसर पर उन्हें सवाई-पद प्राप्त हुआ। उपाध्याय श्री भानुचन्द्र जी ने 'सूर्यसहस्रनाम' ग्रंथ की रचना की। मुनि श्री सिद्धिचन्द जी ने तीर्थ पर लगी पाबंदियाँ हटाईं। आपको जहाँगीर का सलाहकार होने के कारण 'जहाँगीर पंसद' पद प्राप्त हुआ। खरतरगच्छ व तपागच्छ के आचार्य की प्रेरणा से बादशाह अकबर ने वर्ष के 6 मास हिंसा पूर्ण बन्द की। मछलियाँ पकड़ना बंद हुआ। जैन मन्दिरों के आगे बाजे पर लगी पाबंदी समाप्त हुई। बादशाह ने शिकार खेलना, मांस खाना छोड़ दिया। जैन तीर्थों को कर-मुक्त कर दिया।

इसी परम्परा में 19वीं सदी में पंजाब की स्थानकवासी परम्परा से अलग हुए श्री बुटे राय जी महाराज श्री बुद्धिविजय जी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके बाद पूज्य श्री जीवनलाल जी महाराज के शिष्य श्री आत्माराम जी महाराज ने स्थानकवासी दीक्षा का त्यागकर पुनः पंजाब में मूर्तिपूजा प्रारम्भ की। आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि, आचार्य श्री समुद्रविजयसूरि, आचार्य श्री विजयइन्द्रसूरि प्रभावक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने अपनी परम्परा

को पंजाब में फैलाया। पंजाबी ओसवालों में अधिकांश श्वेताम्बर, स्थानकवासी व पूर्तिपूजक हैं, जबकि अग्रवाल सभी सम्प्रदायों में पाये जाते हैं।

एक अन्य प्राचीन पट्टावली का वर्णन मुनि श्री ज्ञानसुन्दर जी ने किया है जिसमें सं. 400 से लेकर सं. 1667 तक पंजाब, सिन्ध में धर्म-प्रचार करने वाले आचार्य का वर्णन है। यह पट्टावली 'पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास' में प्रकाशित हुई है।

लोकाशाह पट्टावली

श्री श्वेताम्बर जैन-परम्परा में लोकागच्छ की परम्परा 84 गच्छ में की जाती है। इसके संस्थापक वीर लोकाशाह का जन्म गुजरात के अहमदाबाद नगर में माना जाता है। यह गृहस्थ व विद्वान् श्रावक थे। कई पट्टावलियों के अनुसार यह जीवन के अंतिम चरण में मुनि बन गए थे। यद्यपि लोकाशाह क्रान्तिकारी श्रावक थे जिन्होंने अपने समय में जैन यति-परम्परा पर कड़े प्रहार किए। यह युग मुसलमान का युग था। मूर्तिपूजा के विरोध उस समय भारत में भक्ति लहर जन्म ले चुकी थी। जैन श्वेताम्बर-परम्परा में लोकाशाह ने मूर्तिपूजा को आगम- सम्मत मानने से इन्कार कर दिया। इस समय दिगम्बर-परम्परा में तारण पंथ की उत्पत्ति मध्य प्रदेश में हुई। यह लोग भी शास्त्र-पूजा करते हैं प्रतिमा की नहीं।

लोकाशाह ने 45 पुरुषों को अपनी क्रान्ति में शामिल कर जैन साधु दीक्षा प्रदान करवाई। इन लोगों ने अपने गच्छ का नाम लोकागच्छ रखा। लोकाशाह का समय वि. सं. 15-16वीं शताब्दी है। इस परम्परा के कुछ साधु पंजाब आए। इन्होंने लाहौर में उत्तरार्ध लोकागच्छ की स्थापना की। लोकाशाह के भाणा जी आदि पुरुष साधु बने। उनके विशाल शिष्य-परिवार की संख्या 1120 तक हो गई थी। भाणाजी के 5 शिष्यों में सखों जी के दो शिष्य थे- (1) यति श्री रायमल्ल, (2) श्री भल्ली जी। दोनों सं. 1560 में लाहौर पधारे। इस परम्परा में क्रमशः आचार्य श्री बजरंग, आचार्य श्री लव जी, श्री हरिदास जी, श्री वृन्दावन जी, श्री भवानीदास जी, श्री मलूकदास जी, श्री मनसाराम जी, श्री भोजराज जी, श्री महासिंह जी, श्री कुशालचन्द्र जी, श्री छज्जुमल जी, पूज्य श्री अमरसिंह जी हुए। आचार्य श्री लव जी ऋषि से लेकर सभी आचार्यों का धर्म-प्रचार क्षेत्र प्राचीन पंजाब रहा। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि लोकाशाह की क्रान्ति ज्यादा स्थिर न रह सकी। लोकाशाह की परम्परा के पश्चात् फिर से मूर्तिपूजा में विश्वास करने लगे। पंजाब के अधिकांश मन्दिरों में लोकागच्छीय यतियों द्वारा स्थापित प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं।

मुल्तान, स्यालकोट, लाहौर, गुजरांववाला, फरीदकोट, समाना, सुनाम, पटियाला, सिरसा, हाँसी, हिसार, भटिण्डा, लुधियाना, कपूरथला, अमृतसर, जालंधर में लोकाशाह की परम्परा के यतियों ने धर्म-प्रचार के केन्द्र स्थापित किए। इन नगरों में राजा व प्रजा द्वारा इन्हें बहुत सम्पत्ति व संरक्षण मिला।

आचार्य श्री बजरंग जी के बाद आचार्य श्री लव जी ऋषि ने इस गच्छ में पुनः सुधार किए। इनके गच्छ से ऋषि सम्प्रदाय माना जाता है। लोकागच्छ के अधिकांश यति भी अपने नाम के पीछे ऋषि उपनाम लगाते हैं।[35] श्वेताम्बर स्थानकवासी-परम्परा का वर्तमान रूप आचार्य श्री लव जी द्वारा स्थापित परम्परा है।

पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज 20वीं सदी के प्रभावक आचार्य थे। आज पंजाबी साधुओं में अधिकांश का संबंध आपसे है। आपके कुछ शिष्य मुनि श्री आत्माराम जी के नेतृत्व में तपागच्छ में चले गए।

पूज्य श्री अमरसिंह जी के बाद श्री रामबख्श, पूज्य श्री मोतीराम, पूज्य श्री सोहनलाल, पूज्य श्री कांशीराम जी हुए। सभी साधु पंजाबी साधु थे। विद्वान्, प्रभावक व आचार्य थे। इनके पाट पर आचार्य श्री आत्माराम जी बैठे, जो बाद में अखिल भारतीय श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य कहलाए। आगमों के प्रथम हिन्दी टीकाकार विश्वविख्यात श्री आत्माराम जी महाराज का अपना स्थान है। आप जैन एकता के प्रतीक थे। उनके शिष्य-परिवार जी उन्हीं की तरह आगमों के टीकाकार हैं। आचार्य डॉ. शिव मुनि आपके शिष्य हैं। भण्डारी श्री पद्मचन्द जी महाराज जैनधर्म के प्रभावक संतों में हैं। उपाध्याय श्री फूलचन्द जी भी आचार्यश्री के प्रशिष्य थे, जो आगमों के टीकाकार थे। वर्तमान में श्री रत्न मुनि जी उनका कार्य आगे बढ़ा रहे हैं। श्री मनोहर मुनि जी उपाध्याय पद से विभूषित हैं। पूज्य श्री कांशीराम जी की परम्परा में श्री सुमन मुनि जी इतिहासकार संत हैं। आचार्य श्री आत्माराम जी के देवलोक के बाद आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी इस परम्परा के द्वितीय आचार्य हुए। वे बहुभाषाविद्, महान् प्रभावक आचार्य थे। पंजाब पर आपके बहुत उपकार थे। वर्तमान में आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी 450 पुस्तकों के लेखक, महान् पुण्यवान प्रभावक आचार्य हैं। आप अपने श्रद्धेय गुरुदेव उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी की तरह प्रभावक विनम्र संत हैं।

लोकाशाह की परम्परा में पंजाब की दो परम्पराएँ राजस्थान से आई हैं। एक है ऋषि श्री मन जी की परम्परा, जिसमें पूज्य श्री रतीराम जी, पूज्य श्री नंदलाल जी, श्री रूपचन्द जी जैसे महात्मा व सिद्ध पुरुष हुए। श्री रतिराम जी महाराज का स्मारक मालेर कोटला में है। श्री रूपचन्द जी का गृह मालेर कोटला व जन्म-स्थान लुधियाना है। श्री रूपचन्द जी ने कोई शिष्य नहीं बनाया। उनके गुरु-भ्राता की परम्परा में श्रद्धेय श्री कुन्दनलाल जी, श्री गोविन्दराम जी, श्री छोटेलाल जी हुए। उनके शिष्य अर्हत् जैनसंघ के प्रथम आचार्य, विश्वधर्म-संस्थापक, विश्वविख्यात, जैन एकता के प्रतीक श्री सुशील मुनि जी हुए उन्होंने जैनधर्म को एक ध्वज, एक शास्त्र, एक प्रतीक प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सात समुद्र पार जैनधर्म पहुँचाया। देशी व विदेशी लोगों ने अहिंसा के माध्यम से जैनधर्म को अपनाया। उनके पश्चात् उनके गुरु-भ्राता आचार्य श्री सुभाग मुनि जी महाराज व उपाचार्य डॉ. (साध्वी) साधना जी इस परम्परा को आगे बढ़ा रही हैं। डॉ. साधना जी अपनी गुरुणी श्री राजकली जी महाराज के साथ अर्हत् जैनसंघ की सेवा कर रही हैं। यह सब साध्वियाँ श्री पन्नादेवी जी महाराज की शिष्या-परिवार से हैं।

पंजाब के प्रसिद्ध स्थानकवासी साधुओं में पूज्य श्री मायाराम जी, स्व. उपाध्याय श्री प्रेमचन्द जी महाराज, शेरे पंजाब श्री शान्तिस्वरूप जी, श्री सुमतिप्रकाश जी, श्री सहज मुनि जी तपस्वी का नाम प्रमुख है। तपस्या के मामले में श्री सहज मुनि जी का विश्व रिकार्ड है पर साध्वियों में उपप्रवर्त्तिनी श्री हेमकुंवर जी व श्री मोहनमाला जी का नाम उल्लेखनीय है।

मनोहरगच्छ की पट्टावली

वर्तमानकाल के महान् दार्शनिक, राष्ट्रसंत उपाध्याय श्री अमर मुनि जी का सम्बन्ध इस परम्परा से है। आपने जैन ग्रन्थों पर महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी कार्य किया है। 100 से ज्यादा ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। जैनधर्म को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने में आपका महत्वपूर्ण हाथ रहा है। अनेकों विद्वान् साधुओं को जैनधर्म की प्रचार की मशाल थमाने में आपका प्रमुख हाथ था, जिनमें आचार्य श्री सुशील मुनि जी महाराज, विश्वकेसरी श्री विमल मुनि जी महाराज, आचार्य साध्वी श्री चन्दना जी महाराज के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने राजगिरि में विश्व वीरायतन का निर्माण किया। इस पट्टावली का सार है -

पंजाब की श्वेताम्बर जैन स्थानकवासी परम्परा अपना सम्बन्ध भगवान् महावीर से सीधा स्थापित करती है। इस पट्टावली में 58वें पाट पर विराजित श्री हीरसागर जी की भेंट श्री लोंकाशाह से हुई थी। उनसे प्रभावित होकर आपके गच्छ का नाम नागौरीगच्छ पड़ा। आप राजस्थान के नोलाई ग्राम के थे। आपने मित्र श्री रूपचन्द जी के साधु बने। आपके तीन शिष्य हुए। आपके शिष्यों में कुछ साधु स्यालकोट पहुँचकर यति बन गये। इनमें से प्रमुख अमृतसर में यति श्री गंगाराम जी हुए, जिन्होंने आयुर्वेद का ग्रन्थ 'यति गंग निदान' लिखा। फगवाड़ा के यति श्री मेघ मुनि के 'मेघ विनोद' व 'मेघ विलास' आयुर्वेद के उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। इसी पट्टावली के 60वें पाट पर श्री दीपागर जी ने श्री रूप जी से दीक्षा लेकर नये लोगों को जैनधर्म में दीक्षित किया। 68वें पाट पर पूज्य श्री सदारंग जी के धर्म-प्रचार में प्राचीन पंजाब का विस्तृत क्षेत्र शामिल था। आप नौ वर्ष की आयु में साधु बने। आपके आचार्य महोत्सव पर हिसार निवासी सेठ ने 14,000 चाँदी के सिक्के दान किये थे।

69वें पाट पर विराजित श्री मनोहरदास जी के नाम से यह गच्छ उनके नाम से प्रसिद्ध हो गया। आचार्य श्री मनोहरदास जी समस्त भारत भर में घूमे थे। श्रद्धेय श्री भागचन्द जी, श्री सीताराम जी के पश्चात् आचार्य श्री शिवराम जी हुए।

73वें पाट पर विराजित पूज्य श्री हरजीमल जी पंजाब के विभिन्न अंचलों में पधारे थे। आपके शिष्य आचार्य श्री रत्न मुनि जी ने समस्त भारत का भ्रमण किया। आपने 45 ग्रन्थों की हिन्दी भाषा में रचना की। श्वेताम्बर तपागच्छ के आचार्य श्री आत्माराम जी ने आपसे आगम व उनकी टीकाओं का अध्ययन किया। स्थानकवासी परम्परा के त्याग के बाद भी आप उनके प्रशंसक रहे।

श्री रत्न मुनि जी महाराज के पास पूज्य श्री कुंवरसेन जी मालेरकोटला में सं. 1875 में वैरागी रहे। आपका देवलोक सं. 1938 में हुआ। इसी परम्परा में ऋषिराज गणि, श्री श्यामलाल जी, आचार्य श्री पृथ्वीचन्द जी महाराज संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी के कवि, लेखक व प्रचारक थे। आपने अपने चरण-कमलों से पंजाब की पुण्य धरा को पवित्र किया। आप उपाध्याय श्री अमर मुनि जी के गुरु थे।

एक अन्य महत्वपूर्ण पट्टावली

आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने 'पट्टावली संग्रह' में पटियाला में लिखी सं. 1810 की एक पट्टावली का विवरण दिया। इस सारी पट्टावली की भाषा संस्कृत-प्रधान है तथा घटनाओं से भरी पड़ी है। यहाँ हम इस पट्टावली के महत्वपूर्ण अंश दे रहे हैं।

"आचार्य श्री विमलचन्द जी सूरि के तीन शिष्य थे- श्री नागदत्त जी, श्री माइलचन्द जी, श्री नेमचन्द जी। सं. 1279 में यह लोग 45 साधुओं के साथ लाहौर आये। वहाँ धर्म-प्रचार किया।

सं. 1587 में श्री रूपचन्द व श्री देवासूरि ने अनेकों अग्रवालों व ओसवालों को नागरी लोकागच्छ में शामिल किया। आचार्य श्री दीपागर ने अपने प्रचार से 1,84,000 परिवारों को जैनधर्म में दीक्षित किया। उस समय लुधियाना में श्रावक श्रीचन्द ओसवाल महान् धर्म करने वालों में एक थे। वह बहुत सम्पन्न थे। उनका एक मित्र देव उनकी सहायता करता था।

एक बार देवता ने आचार्य श्री दीपागर की प्रशंस विहरमान सीमंधरस्वामी के मुख से सुनी। आप उस समय समाना में तप कर रहे थे। श्री श्रीचन्द ओसवाल ने आपको लुधियाना व उसके आसपास धर्म-प्रचार का निमन्त्रण किया।

फिर महत्त्वपूर्ण श्री कल्याणसूरि जी हुए जिनका देवलोक लाहौर में हुआ। इस पाट पर विराजित श्री सदारंगसूरि जी ने देहली परिवारों को दीक्षित किया। सं. 1760 में आपने लाहौर में बादशाह के साले को प्रभावित कर जीवहत्या पर पाबंदी लगवाई। इनके शिष्य श्री अनन्तराम जी वनूड़ निवासी का नाम उल्लेखनीय है।

इसी परम्परा के श्री जगजीवन राम जी महाराज बहुत तपस्वी संत थे। आपने सरस्वती पतन, सिरसा, हिसार, बुड़लाढा, दोराहा, सुनाम, समाना, रोपड़, वेंजवाडा, राहों, जालन्धर, गुजरात, रावलपिंडी, लाहौर में अपने धर्म-केन्द्र स्थापित किये। सिरसा के श्री मुहम्मद हुसैन की जैन साधुओं के प्रति घृणा को दूर किया। सं. 1816 में आपका स्वर्गवास हुआ। यह पट्टावली बहुत विस्तृत हैं। इसमें विभिन्न गच्छों की उत्पत्ति का समय वर्णित है।

श्री श्वेताम्बर जैन तेरापंथ व पंजाब

तेरापंथ सम्प्रदाय जैनधर्म का सबसे नवीन सम्प्रदाय है। इसके संस्थापक आचार्य श्री भिक्षु का सम्बन्ध लोकाशाह की परम्परा के क्रियोद्धारक श्री धर्मदास जी से है। मनोहरगच्छ के श्री मनोहरदास, शतावधानी श्री रत्नचन्द जी इस परम्परा में हुए।

आचार्य श्री भिक्षु का कार्य-स्थल तो राजस्थान रहा। आपके गुरु पूज्य श्री रघुनाथ जी थे। पूज्य श्री जयमल जी, पूज्य श्री हस्तीमल जी व पूज्य श्री चौथमल जी का सम्बन्ध भी रघुनाथ जी से है। एक परम्परा के अनुसार आचार्य श्री भिक्षु पंजाब से आये थे। पंजाब में तेरापंथ का आगमन 19वीं सदी में श्री जयाचार्य के समय से हो गया था। पर तेरापंथ का असल प्रचार-प्रसार करने का सौभाग्य इस सदी में अंतर्राष्ट्रीय संत, भारत ज्योति अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति श्री तुलसी जी को है। आपके प्रताप से जैनधर्म जनधर्म बन गया। आपसे पहले तेरापंथ साधु-साध्वी में स्वाध्याय की व्यवस्था ठीक नहीं थी। आपने अपने विद्वान् साधुओं के माध्यम से अच्छा मुनि-मण्डल व साध्वी-मण्डल बनाया। राष्ट्र में व्याप्त बुराइयों से लेकर अपने शिष्य-परिवारों को भारत के कोने-कोने में भेजा। लाखों लोग अणुव्रती बने, जैन बने।

पंजाब में धूरी, संगरूर, लुधियाना, भवानीगढ़, जगराओ, लोंगोवाल, सुनाम, मोगा,

अमरगढ़, शेरपुर, नाभा में अनेकों नये जैन बनाये हैं। वर्तमान आचार्य ने प्रेक्षा ध्यान के माध्यम से संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

पंजाब में तेरापंथ का प्रचार करने वालों में शतावधानी पूज्य श्री धनराज, श्री चन्दन मुनि, श्री अमोलक मुनि, मुनि श्री जयचन्द, श्री वर्धमान मुनि का नाम उल्लेखनीय है।

तेरापंथ साधु-साध्वियों का वर्तमानकाल में पंजाब में उल्लेखनीय योगदान है। कुछ को छोड़ ज्यादा साधु राजस्थानी ओसवाल हैं।

आचार्य श्री तुलसी ने जैन विश्वभारती के माध्यम से जैन यूनिवर्सिटी लाडनूं में स्थापित की। जैनधर्म का विदेशों में प्रचार-प्रसार के लिए 'श्रमण' व 'श्रमणी' सम्प्रदाय स्थापित किया। तेरपंथ साधु-साध्वी की व्यवस्था आचार्यश्री के हाथ में है। जो साधु एक बार एक क्षेत्र में आता है, जरूरी नहीं दूसरी बार आये। उनके देवलोक के बाद उनके पट्टाधीश आचार्य श्री महाप्रज्ञ हैं, जो गणाधिपति श्री तुलसी की परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के देवलोक के पश्चात् आचार्यश्री महाश्रमण जी तेरापंथ परंपरा का नेतृत्व कर रहे हैं।

इस सम्प्रदाय ने अनेकों शतावधानी, चित्रकार, प्रवचनकार, साहित्यकार, कवि व साधु-साध्वी को जन्म दिया है। पंजाब में तेरापंथ वर्तमान में बहुत प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ा है, जिसका श्रेय गणाधिपति आचार्य श्री तुलसी को जाता है। आचार्य श्री तुलसी के साधु-साध्वी विद्वान्, कलाकार, ध्यान व स्वाध्ययन में समर्पित तपस्वी, शतावधानी हैं।

पंजाब में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय

जैनधर्म में दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं- श्वेताम्बर व दिगम्बर। दोनों सम्प्रदायों को भिन्न-भिन्न प्रदशों में भिन्न-भिन्न जातियाँ मानती हैं। उत्तर भारत में दो प्राचीन जातियाँ हैं-अग्रवाल व ओसवाल। ओसवाल विशुद्ध श्वेताम्बर सम्प्रदाय को मानती है। इस जाति का प्राचीन इतिहास है। ओसिया (जोधपुर) में आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि द्वारा ओसवाल वंश की उत्पत्ति 8वीं शताब्दी के बीच हुई मानी जाती है। दूसरी जाति है अग्रवाल ये श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में पाई जाती है। ओसवाल जाति राजस्थान से सिन्ध होती हुई पंजाब, काश्मीर तक पहुँची। पाकिस्तान बनने से पहले अमृतसर तक ओसवाल जैन उपलब्ध होते थे। बाकी हरियाणा, पंजाब में ओसवाल को भावड़ा भी कहते हैं। भावड़ा नाम का एक गच्छ भी सं. 16 सदी में हुआ है। अग्रवाल में बहुसंख्यक दिगम्बर हैं। अम्बाला से लेकर हिसार, रोहतक, पानीपत, सोनीपत, देहली में दिगम्बर बहुसंख्यक हैं। इसका कारण अग्रोहा नगरी भी हो सकती है। भगवान् महावीर के बाद से ही कुछ नग्न भिक्षु पंजाब व पश्चिमोत्तर प्रदेशों में घूमते थे। इनमें से कुछ से सिकंदर भी मिला था। यूनानी लेखकों के अनुसार कालनस नाम के एक नग्न मुनि को सिकंदर साथ ले गया था। इसका स्वर्गवास ऐथन्स में हुआ था। पंजाब युद्धों का क्षेत्र रहा है। जिस कारण दिगम्बर सम्प्रदाय वर्तमान पंजाब में न पनप सका। परन्तु हरियाणा और दिल्ली में अनेकों श्रेष्ठी व विद्वान् हुए, जिन्होंने इस सम्प्रदाय को इन क्षेत्रों में फैलाया। पंजाब में दिगम्बर सम्प्रदाय मुनि की कठिन चर्या के कारण न फैल सका परन्तु दिगम्बर पुराणों में तीर्थंकरों के समवसरण का पंजाब, काश्मीर व गंधार क्षेत्रों में विचरण करने का उल्लेख है। मथुरा के शिलालेखों

व प्रतिमाओं से दिगम्बर सम्प्रदाय की स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पुराणों में एक दिगम्बर जैन मुनि का उल्लेख मिलता है जिसके प्रभाव से प्रजा ने यज्ञ इत्यादि करना छोड़ दिया था। श्रवणबेलगोला के शिलालेश (2 ई.पू.) में आचार्य श्री समन्तभ्रद स्वयं कहते हैं - "पहले मैंने पाटलिपुत्र में शास्त्रार्थ का वाद्य बजाया फिर मालवा और ठकक् (अटक), कांचीपुर और विदिशा (म.प्र.) में शास्त्रार्थ करता हुआ कर्नाटक आ गया हूँ। जहाँ विद्या धारण करने वाले योद्धाओं की आवश्यकता है। हे राजन्! मैं धार्मिक शास्त्रार्थ का इच्छुक हूँ। मैं सिद्ध करना चाहता हूँ कि इन लोगों की भीड़ में सिंह कैसे घूमता है।"

आचार्य श्री समन्तभद्र यद्यपि दिगम्बर थे तथापि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। आपने अनेकों संस्कृत व प्राकृत ग्रंथों की रचना की है।

श्वेताम्बर मान्यता दिगम्बर सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्री शिवभूति का उल्लेख करती है। दिगम्बर-परम्परा में एक शिवाचार्य का वर्णन है, जिनका प्रचार-क्षेत्र समस्त उत्तर भारत था। आदिपुराण में प्राचीन पंजाब के 10 क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है- (1) आरठ (अटका), (2) उनीकर (शेरकोट जिला झंग, पाकिस्तान), (3) कम्बोज (रामपुर, राजौरी, काश्मीर), (4) कुरु (स्थानेश्वर, हिसार व हस्तिनापुर), (5) अर्ध-कैकय (व्यास व सतलज के मध्य का भाग जिसमें शाहपुर, गुजरात व जेहलम जिले पड़ते हैं), (6) गंधार (काश्मीर, अफगानिस्तान, (7) भद्र (रावी व गुजरांववाला का प्रदेश), (8) बाल्हिक (व्यास व सतलज के बीच सिंध के उत्तर-पश्चिम का इलाका), (9) सिन्धु, (सिन्ध, राजस्थान व पाकिस्तानी पंजाब व भारतीय पंजाब के कुछ भाग), और (10) सौवीर (सिन्ध नदी के पार का क्षेत्र)।

इस भौगोलिक स्थिति से पता चलता है कि तब तक दिगम्बर सम्प्रदाय इन क्षेत्रों में फैल चुका था। 9वीं सदी में आचार्य श्री पुष्पदेव द्वारा लिखे 'जसहुर चरिउ' में यौधेय देश की पंजाब की दो नदियों के मध्य में माना है। यह बात पुरातत्त्व विभाग से काफी प्रमाणित हो रही है कि लुधियाना सनेत में यौधेय गण के सिक्के ही विपुल मात्रा में मिलते हैं। योद्धा पंजाब की कोई जाति रही होगी ऐसा हमारा मानना है। डॉ. हीरालाल जैन व डॉ. ए.एन. उपाध्याय ने इस ग्रंथ की भूमिका में इन्हें पटियाला के राजपुरा क्षेत्र के यौधेय की राजधानी माना है। गुप्तकाल के जैन मूर्ति के भग्नावशेष पंजाब व उत्तर सीमान्त तक प्राप्त हुए हैं। गुप्त-नरेश महासेन के पुत्र कुमारमात्य देवगुप्त ने छठवीं सदी में जैनधर्म का प्रचार पंजाब तक किया, वह थानेश्वर में राज्यवर्धन से पराजित होकर आचार्य श्री हरिगुप्त के पास साधु बन गया।

हर्षवर्धन (606-647) के समय भी जैन भिक्षु पंजाब क्षेत्र में पाये जाते थे जो अधिकांश दिगम्बर सम्प्रदाय से संबंधित रहे थे। 10वीं शताब्दी में हुए गणधर कीर्ति, 13वीं शताब्दी में हुए कवि श्रीधर ने पंजाब, सिंध, नेपाल, व उत्तर प्रदेश में धर्म-प्रचार किया।

दिगम्बर सम्प्रदाय में यतियों की तरह भट्टारक पैदा हुए। दिल्ली के भट्टारकों का मुगल दरबार में बहुत सम्मान था। जिसके कारण हरियाणा के क्षेत्रों में दिगम्बर सम्प्रदाय पनपा। सन् 1296 से 1310 तक भट्टारक प्रभाचन्द्र ने फिरोजशाह को प्रभावित किया। वह धर्म-प्रचार करने के लिए वर्तमान हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली व राजस्थान के क्षेत्रों में

[illegible] सं. 13-14 [illegible]

[illegible]

[illegible]

सं. 1499 में [illegible] 1541 में [illegible] सं. 1537-1597 में [illegible]

[illegible] सं. 1675 में [illegible] 75 [illegible]

[illegible] सं. 1765 से 1778 तक [illegible] रहे हैं।

[illegible] 1857 के बाद [illegible]

1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद [illegible]

हरियाणा में बहुत-से महान् [illegible] का जन्म हुआ। जो धर्म, देश व संस्कृति के प्रति समर्पित रहे हैं।

[illegible] की [illegible] परम्परा

पंजाब में [illegible] इस कारण इनके बारे में कोई विशेष विवरण नहीं मिलता।

राजा विक्रमादित्य से पहले उज्जैनी के पाट पर राजा गर्दभिल्ल बैठा। उसके समय कालकाचार्य ने अपनी बहन सरस्वती सहित दीक्षा अंगीकार की थी। राजा गर्दभिल्ल कामुक प्रकृति का राजा था। सरस्वती साध्वी की अभूतपूर्व सुन्दरता के कारण राजा ने उसका अपहरण करवाकर महल में ले आया। आचार्य, स्थानीय प्रजा ने उसे बहुत समझाया पर राजा न माना। ऐसी स्थिति में आचार्य श्री कालक अपनी बहन की मुक्ति के लिए सिन्धु पार ईरान के 52 शाहों से मिले, वहाँ धर्म प्रभावना की। उन राजाओं ने मिलकर गर्दभिल्ल का राज्य समाप्त किया। शाहों को उज्जैनी का राज्य दिया। जब विदेशी शासक ज्यादा जुल्म करने लगे तो समस्त राज्य अपने भानजे विक्रमादित्य को दिलाया।

आचार्य श्री कालक ने सिन्धु पंजाब के क्षेत्रों में धर्म-प्रचार ही किया। वह तो सुवर्णभूमि (ब्रह्म) तक धर्म-प्रचार करते हुए पहुँचे।

यति-परम्परा में भी साध्वियाँ होती थीं जिनके नाम यति श्री विमलचन्द्र जी के एक पत्र में आए हैं। जहाँ अन्य श्री पूज्यों के साथ उनका धर्म-प्रचार क्षेत्र तय किया गया है।

इस स्थान पर हमें साध्वियों का प्राचीन प्रमाण भटिण्डा की एक खरतरगच्छीय साध्वी का भी मिलता है। पंजाब की साध्वियों ने जहाँ संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी में स्वतंत्र रचनाएँ की हैं, वहाँ प्राचीन जैन ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त रहा है। इस काम में साध्वियाँ मुनियों से आगे रही हैं। इन्हीं प्रतिलिपियों के अन्त में प्रतिलिपि करने का नाम संवत् देने की परम्परा है। इस आधार पर ही हम प्राचीन साध्वियों के बारे में कुछ लिखने की चेष्टा कर रहे हैं। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण साध्वियों की परम्परा समस्त भारत में अनुपलब्ध है। यह सारा विवरण 400 वर्षों का है। हमारे विवरण का आधार श्रद्धेय इतिहास केसरी श्री सुमन मुनि जी महाराज का और पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज का जीवन-चरित्र व पं. श्री हीरालाल दुग्गड़ का ग्रंथ 'पश्चिम एशिया व पंजाब में जैनधर्म' है।

लोकागच्छ की साध्वियों का प्रमुख स्थान पंजाब रहा है। इनका प्रचार-क्षेत्र भी सीमित रहा है। साध्वी श्री खेतां जी महाराज का समय सं. 1750 है। वह पंजाब हरियाणा में धर्म-प्रचार करते रहे। अनेकों जीवों का प्रतिबोध कर साध्वी-श्राविकाओं को दीक्षा दी। इनकी शिष्या श्री वराता जी हैं। दो और नाम भी प्राप्त होते हैं - (1) श्री मीना जी, और (2) श्री ककी जी। आपने आचार्य श्री वृन्दावन जी से दीक्षा ग्रहण की थी। इसी समय सेठ रत्नसिंह व माता थैया की सुपुत्री साध्वी श्री वगता जी हुईं। आपका सम्बन्ध राजपूत किसान-परिवार से था। आपकी शिष्याओं में (1) श्री दया जी, (2) श्री सीता जी, और (3) श्री फेलो जी थीं। आपने पंजाब के गांव-गांव में भगवान् महावीर का सन्देश पहुँचाया। आपकी शिष्या साध्वी श्री सज्जना जी द्वारा निशीथसूत्र पर टब्बा की प्रति सं. 1765 श्रावण वदी 11 को लिखी गई।

साध्वी श्री वगता जी बहुत विद्वान् साध्वी थीं। एक बार मुसलमानों के गांव में पधारीं। साध्वियाँ उनके यहाँ से आहार ले आईं। श्री वगता जी ने पात्र देखकर कहा- "इसे परठ दो, यह अशुद्ध भोजन है। छोटी साध्वियों ने गुरुणी श्री वगता जी का आदेश माना और बाद में पता चला कि भोजन में अण्डे की जर्दी मिली हुई थी। आपका स्वर्गवास सं. 1780 में हुआ।

धर्म-प्रभाविका श्री सीता जी महाराज का जन्म अमृतसर के जौहरी-परिवार में हुआ। आपकी माता श्रीमती अमृतादेवी भी श्राविका थी। माता की इस प्रवृत्ति के प्रभाव व प्रेरणा से सं. 1755 में साध्वी श्री वगता जी के पास दीक्षित होकर आत्म-कल्याण में जुट गए। आपने एक बार एक प्रवचन में 5,000 व्यक्तियों को मांस व शराब-सेवन का त्याग करवाया।

साध्वी श्री खेमा जी महाराज श्री सीता जी महाराज की शिष्या थीं। आपका जन्म रोड़का (रोहतक) में हुआ था। आपने परिवार का त्यागकर वृद्धावस्था में सं. 1800 में संयम जीवन अंगीकार किया। सं. 1801 में पंचनेर साधु-सम्मेलन में आप स्यालकोट से पंचनेर पधारीं। आपकी प्रमुख शिष्याएँ श्री सदाकुंवर जी, श्री वेनती जी, श्री सज्जा जी थीं। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर 250 जोड़ों ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

साध्वी श्री फूला जी भी पंचनेर सम्मेलन में शामिल हुई थीं। उनके बारे में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। आप आगमों की प्रकाण्ड पण्डिता थीं, बहुभाषाविद् थीं।

साध्वी श्री ज्ञाना जी का स्थानकवासी-परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप सुनाम की थीं तथा सं. 1870 में साध्वी बनीं। सं. 1895 तक आप जीवित रहे। आपकी प्रमुख शिष्या श्री सदाकुंवर जी थीं। आपके समय कोई भी साधु किसी परम्परा का न रहा। मात्र यति घूमते रहते थे। साध्वीश्री स्वयं बहुभाषाविद् थीं, आगमों की मर्मज्ञ थीं। सं. 1898 में उन्होंने 'नेमीनाथ व्याला' पुस्तक की प्रतिलिपि की थी।

ऐसे कठिन समय में भगवान् महावीर की पाट-परम्परा को शाश्वत रूप देने का सौभाग्य इसी साध्वी को है। इन्होंने अपने भानजे श्री रामलाल जी को साधु बनाया। उन्हें पढ़ाया, शास्त्रों का ज्ञान दिया। फिर शिष्य-परिवार बढ़ने लगा तो उपयुक्त समय देखकर उन्हें आचार्य पद प्रदान किया।

साध्वी श्री शेरा जी ने पूज्य (आचार्य) श्री अमरसिंह जी को प्रेरणा देकर साधु बनाया था। साध्वी श्री सज्जना जी जाति की राजपूत थीं और दिल्ली की रहने वाली थीं। सं. 1865 में आप साध्वी बनीं। इनकी दो शिष्याएँ थीं -(1) श्री ज्ञानो जी, (2) श्री शेरा जी।

साध्वी श्री मूला जी कुम्भकार जाति की साध्वी थीं। तपस्वी श्री छज्जमल्ल जी इनके सांसारिक मौसा थे। सं. 1897 में आप साध्वी बनीं। आपकी गुरुणी साध्वी श्री खुवा जी ने आपको आगमों का अध्ययन कराया। आपकी तीन शिष्याएँ थीं- (1) श्री बथो जी, (2) श्री तावो जी, (3) श्रीमेलो जी। साध्वी जी मेलो जी का जन्म गुजरांववाला के सेठ पन्नालाल के यहाँ हुआ। सं. 1901 में आप उत्तर प्रदेश में साध्वी बनीं। आपने पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, जम्मू-काश्मीर में धर्म-प्रचार किया। 84 वर्ष की अवस्था में सं. 1984 में रायकोट (लुधियाना) में आपका स्वर्गवास हुआ।

साध्वी श्री चम्पा जी देहली निवासी लाला रूपचन्द्र जी की सुपुत्री थीं। श्री गुलाबचन्द्र जौहरी की पुत्रवधू थीं। आपने शादी के बाद सं. 1928 फाल्गुन वदी में दीक्षा ग्रहण की। आप सं. 1975 तक जीवित रहे।

पंजाबी जैन साध्वी परम्परा की मुख्य धारा

यह विश्लेषण मात्र स्थानकवासी-परम्परा का है। दूसरी परम्परा का विश्लेषण उपलब्ध नहीं है।

मुख्य धारा

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
1.	श्री वगता जी	श्री वगता जी	श्री वगता जी	श्री वगता जी
2.	श्री सीता जी	श्री सीता जी	श्री सीता जी	श्री सीता जी
3.	श्री खेमा जी	श्री खेमा जी	श्री खेमा जी	श्री खेमा जी
4.	श्री सज्जना जी	श्री ज्ञाना जी	श्री बेनती जी	-
5.	श्री ज्ञाना जी	श्री ज्ञाना जी	श्री जिया जी	-
6.	श्री खुवा जी	श्री खुवा जी	श्री वीणा जी	श्री सुखदेवी जी
7.	श्री मूला जी	श्री मूला जी	श्री वथो जी	श्री निहालदेवी जी
8.	श्री मेलो जी	श्री तावो जी	श्री गंगो जी	श्री गंगो जी
9.	श्री पार्वती जी	श्री जयदेवी जी	श्री पन्ना जी	श्री पन्ना जी
10.	श्री राजमती जी	श्री पानकुंवर जी	श्री चन्दा जी	श्री चन्दा जी
11.	-	श्री केवली जी	-	-

उपरोक्त विश्लेषण में प्रथम साध्वी श्री वगता जी चारों धाराओं में सामान्य है। इसी तरह श्री सीता जी से श्री खेमा जी तक धारा एक है। आगे साध्वियों की धाराएँ बंट जाती हैं।

उपधारा

	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
1.	श्री सज्जना जी	श्री तावो जी	श्री वथो जी	श्री निहालदेवी जी
2.	श्री शेरा जी	श्री जयदेवी जी	श्री लखमा जी	श्री प्रेमरेवी जी
3.	श्री पूर्ण जी	श्री गंगादेवी जी	श्री देवा जी	श्री जीवा जी
4.	श्री परमेष्ठी जी	श्री मथुरा जी	-	श्री हुक्मदेवी जी
5.	-	-	-	श्री इन्द्र कौर जी

इनके अतिरिक्त श्री खुवा जी, श्री निहालदेवी जी, श्री वचना जी, श्री विनयपवती जी व श्री प्रभावती जी की परम्परा भी उपलब्ध हैं।

वर्तमान जैन साध्वी-परम्परा

प्रथम परम्परा जैन साध्वी श्री खुवा जी महाराज की है जिसमें वर्तमान समय में उनकी एकमात्र शिष्या श्री विनयवती जी की परम्परा आगे बढ़ी हैं दूसरी परम्परा में साध्वी श्री खण्डी जी की परम्परा तो आगे नहीं बढ़ी। इस परम्परा की कोई साध्वी इस समय दिखाई नहीं देती। सं. 1931 में पूज्य श्री अमरसिंह जी के संघ में 25 साध्वियाँ थीं। सबसे सशक्त परम्परा महासाध्वी प्रवर्तिनी श्री पार्वती जी महाराज की है। इस परम्परा में पंजाब की अधिकांश साध्वियाँ भी आ जाती हैं। कुछ परम्पराओं के नाम देना जरूरी है।

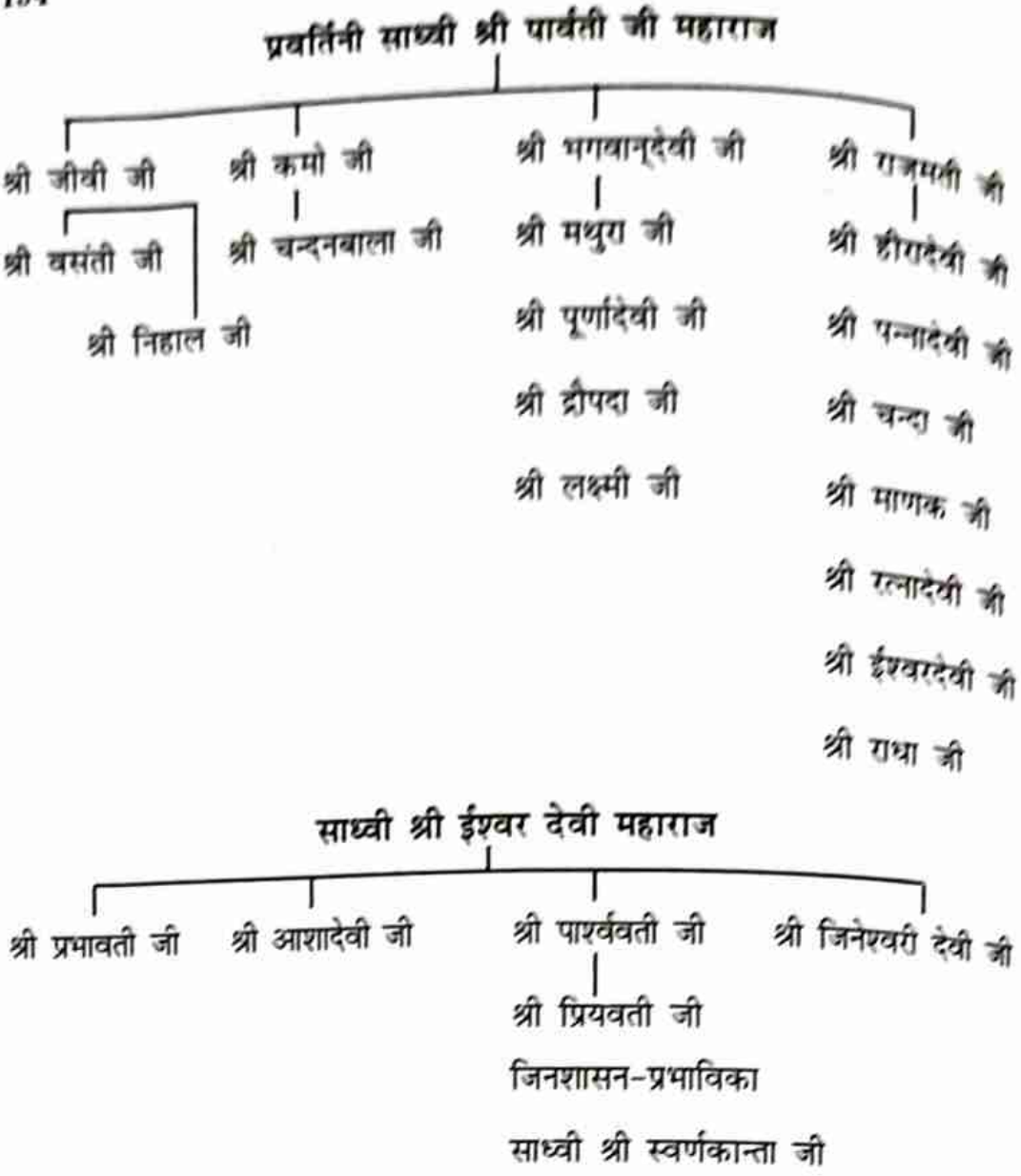

साध्वी श्रीमथुरा जी की परम्परा में श्री धनदेवी व श्री मोहनदेवी की परम्परा आगे बढ़ी। साध्वी श्री धनदेवी जी की पम्परा में उपप्रवर्त्तिनी श्री जगदीशमती जी का शिष्य-परिवार है। इन्हीं की परम्परा उपप्रवर्त्तिनी साध्वी श्री कैलाशवती जी का शिष्य-परिवार है।

साध्वी श्री द्रौपदी जी के परिवार में साध्वी मोहनदेवी जी का परिवार है। श्री मोहनदेवी जी की शिष्याएँ हैं- श्री विमलवती जी, श्री रोशनवती जी, श्री रुक्मणी जी, श्री राजेश्वरी जी, श्री केसरादेवी जी, श्री कौशल्या जी, श्री स्वर्णप्रभा जी की परम्परा काफी आगे बढ़ी है।

उपप्रवर्त्तिनी श्री पार्वती जी महाराज की शिष्या श्री राजमती जी महाराज का परिवार आगे बढ़ा है। साध्वी श्री पन्नादेवी जी की परम्परा आगे बढ़ा है। साध्वी श्री पन्नादेवी जी की परम्परा से साध्वी श्री रायकली जी महाराज की शिष्या अर्हत् जैनसंघ की उपाचार्य डॉ. साधना जी महाराज हैं।

श्री धनदेवी जी की दो शिष्याएँ- श्री गुणमाला जी व श्री सौभाग्यवती जी हैं। श्री सौभाग्यवती जी की शिष्या श्री सीता जी का परिवार बहुत बड़ा है। इसमें श्री सावित्री जी महाराज, साध्वी श्री महेन्द्र जी महाराज तथा साध्वी श्री सुनिता जी महाराज का नाम उल्लेखनीय है।

साध्वी श्री कौशल्य जी महाराज की मुख्य शिष्याएँ श्री विमला जी व श्री प्रमोद जी हैं।

श्री रत्नदेवी जी की शिष्या श्री विनयवती जी हैं। इनकी परम्परा में कुछ और साध्वियाँ भी हैं।

साध्वी श्री हुक्मदेवी जी के परिवार में श्री पद्मा जी व श्री मति जी हुए। श्री पद्मा जी की श्री सत्यावती जी व श्री पवनकुमारी जी हुए। इनका शिष्य-परिवार आगे बढ़ा है। इस तरह श्री मति जी महाराज की शिष्या श्री शशीकान्ता जी के परिवार से डॉ. सरिता जी, साध्वी श्री अनिलकुमारी जी, डॉ. पिंकी जी का विशाल साध्वी-परिवार है। यह परिवार साध्वी श्री खुवा जी का है।

साध्वी श्री प्रियावती की शिष्या श्री वल्लभवती जी, श्री विजयेन्द्रकुमारी जी व श्री सुशीला जी महाराज हैं।

साध्वी श्री ईश्वरदेवी जी श्री राजमती जी महाराज की शिष्या थीं।

साध्वी श्री ईश्वरदेवी जी की चार शिष्याओं के नाम इस प्रकार हैं- (1) श्री पार्श्ववती जी, (2) श्री जिनेश्वरीदेवी जी, (3) श्री प्रभावती जी, तथा (4) श्री आशादेवी जी

श्री पार्श्ववती जी की दो शिष्याएँ थीं- (1) श्री प्रियावती जी महाराज, तथा (2) चरित्र नायिका, जिनशासन-प्रभाविका, जैन-ज्योति, पंजाबी भाषा साहित्य की प्रेरिका, विदुषी श्री स्वर्णकांता जी महाराज। आपके शिष्य-परिवार का उल्लेख इस ग्रन्थ के प्रारंभ में हो चुका है। फिर भी इस संघ में साध्वी श्री राजकुमारी जी, साध्वी श्री वीरकांता जी, साध्वी श्री कमलेश जी, साध्वी श्री सुधा जी, साध्वी श्री संतोष जी, साध्वी श्री स्मृति जी के नाम उल्लेखनीय हैं। आप सभी साध्वी जैन आगमों की विदुषी हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संघ की तपागच्छीय साध्वी आचार्य श्री विजयवल्लभ जी की प्रेरणा से धर्म-प्रचार करने हेतु गुजरात से पधारी थीं, जिनमें श्री देवश्री जी, श्री दक्षश्री जी, श्री मृगावती जी, श्री सुव्रता जी, श्री जसवन्तश्री जी, श्री प्रमोदश्री जी, श्री निर्मलाश्री जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

साध्वी श्री मृगावती जी की प्रेरणा से अनेकों नये मन्दिर, स्कूल, साहित्य का निर्माण भी हुआ। उनकी प्रेरणा का फल वल्लभ स्मारक उनके व्यक्तित्व का प्रतीक है कांगड़ा तीर्थ का जीर्णोद्धार आपने करवाया। लुधियाना के कैंसर अस्पताल के निर्माण में आपकी प्रेरणा रही। श्री प्रमोदश्री जी के नेतृत्व में चण्डीगढ़ तथा मालेर कोटला के मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया।

स्व. गणाधिपति श्री तुलसी जी की परम्परा के साधु-साध्वी 50-55 वर्षों से धर्म-प्रचार कर रहे हैं। उनमें साध्वी श्री मोहनकुमारी जी (तारागनर), साध्वी श्री संघमित्रा

जी, साध्वी श्री कमलश्री जी, साध्वी श्री सुबोधकुमारी जी, साध्वी श्री पिश्ता जी, साध्वी श्री सोहनकुमारी जी महाराज के नाम उल्लेखनीय हैं।

तेरापंथ संघ से अलग हुए कुछ ग्रुप भी पंजाब में धर्म-प्रचार कर रहे हैं, जिनमें साध्वी श्री मंजुलश्री जी, साध्वी श्री मोहना जी, साध्वी श्री जतनकुमारी जी, साध्वी श्री कनकलता जी, साध्वी श्री महिमाश्री जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

पंजाब के पुरातत्त्व स्थल

किसी भी परम्परा को जानने के लिए पुरातत्त्व का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। यह सत्य को जानने का सरल मार्ग है। पंजाब में जैन महत्त्व के पुरातत्त्व थोड़े हैं। इसका कारण यह रहा है कि पंजाब आक्रमणकारियों का द्वार रहा है, जिसके कारण पंजाब की यह विरासत बहुत कम बच पाई है। फिर भी काफी सामग्री उपलब्ध हैं –

(1) हड़प्पा – पश्चिमी पाकिस्तान में यह पंजाब का प्राचीन नगर है। यहाँ से प्राप्त एक नग्न प्रतिमा की तुलना बिहार से प्राप्त लोहानीपुर की प्रतिमा से भी की जा सकती है। यह सभ्यता 7000 ई.पू. प्राचीन मानी जाती है। यहाँ से प्राप्त कुछ मोहरों पर ध्यानस्थ व कायोत्सर्ग मुनियों की मुद्राएँ हैं। प्राचीन वैदिक परम्परा में कायोत्सर्ग की परम्परा नहीं रही, न ही यह बौद्धधर्म में उपलब्ध है।

(2) कल्याण – यह पटियाला से नाभा की सड़क पर पटियाला से 5 किलोमीटर पहले है। यहाँ गांव के द्वार पर टूटे पत्थरों को लोग भैरों मानकर तेल और सिन्दूर चढ़ाते थे, जिसे लेखकद्वय ने पुरातत्त्व विभाग के एक कर्मचारी श्री योगराज के सहयोग से संभाला। यह टुकड़े काले पत्थरों के थे। किसी का सिर था, किसी की पैरों की चौकी का टुकड़ा था। सभी प्रतिमाएँ खड़ी कायोत्सर्ग मुद्रा की श्वेताम्बर प्रतिमाएँ हैं। समय गुप्तकाल का हो सकता है। इन प्रतिमाओं में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव व तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ पहचानी जा सकी हैं। यह पटियाला म्यूजियम में है।

(3) खिजराबाद – यह स्थान रोपड़ के पास है। यहाँ ब्राह्मी लिपि अंकित बहुत-से सिक्के प्राप्त हुए हैं। यहाँ भगवान् महावीर की शीशरहित प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसका समय 8वीं-9वीं शताब्दी माना गया है। यह भी पटियाला में रखी गई है।

(4) ढोलवाहा – यह गांव होशियारपुर से 37 मील की दूरी पर है। इसका संबंध जैन व वैदिक दोनों धर्मों से रहा है। यहाँ एक चतुर्मुखी प्रतिमा का समय 8वीं शताब्दी है। यह साधु आश्रम में रखी गई है।

(5) पिंजौर – पिंजौर का प्राचीन नाम जैन ग्रन्थों में पंचपुर भी आया है। यह चण्डीगढ़ से 20 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ अनेकों तीर्थंकरों की खण्डित प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। भगवान् पार्श्वनाथ व भगवान् ऋषभदेव की पंचतीर्थी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनका समय 8वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी है। कुछ प्रतिमाएँ कुषाण काल की चण्डीगढ़ म्यूजियम में भी पड़ी हैं। पिंजौर वाली सारी प्रतिमाएँ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग में सुरक्षित हैं।

(6) अम्बाला – यहाँ जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार के समय श्वेताम्बर मन्दिर के प्रांगण से कुछ प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। जिन पर सं. 1155 की भगवान् वासुपूज्य की प्रतिमा,

सं. १४८८ की पद्मावती पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। यहाँ प्रसिद्ध जैन तपस्वी स्थानकवासी श्री लालचन्द जी महाराज की प्राचीन समाधि है जो हरिजन परिवार से मुनि बने थे।

(७) चक्रेश्वरी तीर्थ - मान्यता है यह स्थान ८वीं-९वीं शताब्दी का है। तब कुछ तीर्थयात्री चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा के साथ मध्य प्रदेश से यहाँ आकर बस गये। यह खण्डेलवाल जाति के जैन थे। सरहिन्द स्थित यह प्राचीन जैन तीर्थ है।

(८) भटिण्डा - यहाँ के एक सज्जन श्री हंसराज जी बागला के खेत से भगवान् नेमिनाथ, भगवान् संभवनाथ की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं। यह सफेद संगमरमर की थी। भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा विशाल परिकरयुक्त व शिलालेख वाली है। इसका समय विक्रम की 13वीं शताब्दी है। बड़ी प्रतिमा पर शिलालेख है। यह प्रतिमा मोतीबाग पटियाला में है। एक प्रतिमा जिनकल्पी मुनि की है जिसके कंधे पर वस्त्र है तथा आगे रजोहरण पड़ा है।

(९) सुनाम - यह प्राचीन नगर है। इसका सम्बन्ध भगवान् राम से जोड़ा जाता है। यहाँ के एक संन्यासी श्री भगवंत नाथ के डेरे में भगवान् पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा ८वीं-९वीं शताब्दी की थी। हमने खुद यह खण्डित प्रतिमा देखी थी। अब यहाँ नई प्रतिमा स्थापित कर दी गई है। वह भी भगवान् पार्श्वनाथ की है। इस प्राचीन प्रतिमा को यहाँ का कर्मचारी लेकर भाग गया। यह स्थान प्राचीन है। यहाँ कोई जैन मन्दिर रहा है।

(10) कुरुक्षेत्र - भगवान् महावीर के पधारने के कारण जैनधर्म का यह अच्छा क्षेत्र रहा है। यहाँ से खुदाई में एक तीर्थंकर का सिर मिला है जो कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में रखा हुआ है।

(11) अस्तलबोहल - यह कस्बा रोहतक के करीब है। यहाँ भगवान् महावीर पधारे थे। रोहतक में अस्तलबोहल रोहतक के पास ही देहली-रोहतक मार्ग पर एक विशाल डेरा है। जहाँ संन्यासी के मठ में 11वीं शताब्दी की कायोत्सर्ग श्वेताम्बर प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है।

(12) अग्रोहा - अग्रोहा की खुदाई में एक पत्थर के द्वार का ऊपरी भाग मिला है, जिस पर तीर्थंकर की प्रतिमा खुदी है, जो संभवतः भगवान् नेमिनाथ की लगती है। यहाँ एक प्राचीन बौद्ध स्तूप के खण्डहर भी प्राप्त हुए हैं।

(13) सिरसा - यहाँ के सिकन्दराबाद गांव व सिरसा में 9वीं से 11वीं शताब्दी की बहुत-सी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

(14) हाँसी - यहाँ से धातु की दिगम्बर प्रतिमाओं का विशाल भण्डार किले के नीचे दबा मिला था, जिसे पहले सरकार ने संभाला फिर दिगम्बर जैन समाज को दे दिया। सैकड़ों प्राचीन चाहमान युग में पार्श्वनाथ जिनालय की स्थापना आचार्य श्री जिनपतिसूरि ने की थी। जो प्रतिमाएँ इसमें हैं इनका समय प्रतिहार राजाओं का समय है।

(15) रानिला - यह नया दिगम्बर तीर्थ है। रानिला गांव भिवानी के पास है। यहाँ पर 24 तीर्थंकरों का विशाल पट्ट मिला है। मूलनायक भगवान् ऋषभदेव हैं। चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा ८वीं शताब्दी की लगती है। यह भूरे पत्थर की है।

(16) नारनौल - यहाँ 12वीं शताब्दी की दो विशाल तीर्थंकर प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं, जो चण्डीगढ़ स्थित हरियाणा म्यूजियम में स्थापित हैं।

(17) जींद - यहाँ से 11वीं-12वीं शताब्दी की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं, जो आजकल चण्डीगढ़ में स्थित हैं।

(18) तोशाम - यहाँ 9वीं-10वीं शताब्दी की जैन प्रतिमाओं के खण्डित भाग प्राप्त हुए हैं। इसमें एक यक्षिणी की प्रतिमा भी शामिल है।

(19) काँगड़ा - यह प्राचीन जैन तीर्थ है जिसका विज्ञप्ति त्रिवेणी ग्रन्थ में वर्णन है कि यहाँ के किले में भगवान् आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा है।[36] आसपास खण्डित मन्दिर व प्रतिमाएँ हैं। सौभाग्य से यह प्रतिमा बच पाई है। यह प्रतिमा भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा के स्थान पर स्थापित की गई है। कांगड़ा के इन्द्रेश्वर मन्दिर में भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा का लेख डॉ. बुलहर ने पढ़ा है। इसी तरह बैजनाथ पपरोला में एक प्रतिमा लेख का भी उन्होंने उल्लेख किया है।[37]

(20) हस्तिनापुर - हस्तिनापुर महाभारत काल से पहले बना है ऐसी जैन मान्यता है। वैदिकधर्म में महाभारत के कौरवों का सम्बन्ध इस नगर से रहा है। इस नगर को समाप्त करने में गंगा नदी की प्रमुख भूमिका रही है। अब यह नगर कुछ टीलों और गंगा के रेत का नगर है। पर जैनों ने इस तीर्थ की यात्रा न छोड़ी। यहाँ प्राचीन स्थल तो नीशीथा हैं जहाँ भगवान् ऋषभदेव को दान मिला था। पर अब दिगम्बर व श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने वहाँ भव्य मन्दिरों का निर्माण किया। जम्बूद्वीप माता ज्ञानमति जी की प्रेरणा से बना अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का आकर्षण केन्द्र है। अभी कुछ वर्ष पहले एक धातु की खड़ी दिगम्बर प्रतिमा जो भगवान् शान्तिनाथ की है, प्राप्त हुई थी, जो संभवत: 12वीं शताब्दी की है। गंगा नहर की खुदाई से तीन जिन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जो दिगम्बर मन्दिर में स्थापित हैं। लेख तो वहाँ कोई नहीं पर बनावट से वह 8वीं-9वीं शताब्दी की लगती हैं। आचार्य श्री जिनप्रभसूरि ने विविध तीर्थ कल्प ग्रन्थ में हस्तिनापुर के प्राचीन मन्दिरों का वर्णन किया था जो अब उपलब्ध नहीं। दिल्ली की कुव्वते इस्लाम मस्जिद जैन मन्दिर पर आधारित है जो भगवान् ऋषभदेव का था। ये सभी क्षेत्र प्राचीन भाग के महत्त्वपूर्ण भाग थे।

पुरातत्त्व के चिन्ह भारत तक ही नहीं भारत के पार पाकिस्तान (कटासराज), अफगानिस्तान (करेज एमीर), पाकिस्तान, तजाकिस्तान व रूस के क्षेत्रों में प्राप्त हुए हैं जिनके बारे में विद्वानों की मान्यता है कि जैन व्यापारी अपनी धर्म आराधना के लिए ये प्रतिमाएँ भारत से ले गये थे। इनता तो सिद्ध है कि जैनधर्म इन प्रतिमाओं के माध्यम से पंजाब से आगे मध्य एशिया तक पहुँचा।

उपसंहार

प्रस्तुत लेख में हमने एक प्रश्न का समाधान करने की चेष्टा की है कि जैनधर्म पंजाब में किसी न किसी रूप में रहा है। इसका कारण यह है कि यहाँ के लोग गुणग्राही हैं, कदाग्रह से मुक्त हैं। पंजाब में तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, मुनि, साध्वियों ने धर्म-प्रचार का ध्वज ऊँचा रखा है। अनेकों राजनैतिक संकटों को मोल लेकर जैनधर्म की प्रभावना की है। पंजाब में राजाओं व श्रावकों ने अपने ढंग से धर्म-प्रचार किया है। यहाँ स्थानीय

कवियों ने स्तवन लिखे हैं। शास्त्रों पर टीका लिखने वालों में साधुओं के साथ श्रावकों का हाथ भी रहा है। दिगम्बर-परम्परा के मुनि पंजाब में बहुत कम विचरे। उनका स्थान श्रावक पण्डित वर्ग ने ग्रहण किया है। पंजाब में अनेकों ग्रन्थ भण्डार थे, जिनमें अधिकांश वल्लभ स्मारक देहली में पहुँचा दिये गये। अभी भी कुछ शास्त्र भण्डार हैं, जहाँ हजारों अप्रकाशित रचनाएँ सूचियों में दर्ज हैं। इन रचनाओं के रचयिता पंजाब के साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविकाएँ रहे हैं। तीर्थों की सेवा में जैन श्रावक पीछे नहीं। साहित्य निर्माण की गंगा आज भी पंजाब में अविरल बह रही है। पंजाब में हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, अंग्रेजी, राजस्थानी, उर्दू, फारसी भाषाओं के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश साहित्य भी उपलब्ध होता है। अनेकों यतियों ने अपनी सुन्दर लिपियों की कलाकृतियों से इन ग्रन्थों को सुसज्जित किया है। इस लेख में बहुत-से पक्ष किसी कारण अज्ञानतावश छूट सकते हैं पर प्रयत्न करता व्यक्ति कोई अज्ञानता करे तो क्षमा का याचक होता है।

संदर्भ स्थल

1. ऋग्वेद सहित मण्डल 1/अध्याय24/सूत्र 196/पेज 1, 2/4/33/15, 5/2/28/4, 6/1/1/18, 6/2/19/11, 10/12/26/1.

   - महावीर : एक अनुशीलन-आचार्य देवेन्द्र मूनि
2. भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ. 287, भाग-1.
3. देखें- महावीर : एक अनुशीलन, पृ. 19-33.
4. ऋग्वेद 2/33/10, 2/3/1/3, 7/18/22, 10/2/2, 99/7, 10/85/4.
5. वही, 10/85/4, पद्मपुराण 13/350, विष्णुपुराण 31/8/12.
6. श्रीमद्भागवत 7/11/12.
7. (1) आचारांग 1/3/1/308, (2) तैत्तिरीय आरण्यक 10/63, सायण भाष्य भग्ग, पृष्ठ 778, (3) जावालोपनिषद्, (4) दीघनिकाय समञ्जफल सूत्र 18/21, विनयपिटक महावग्ग, पृष्ठ 42.
8. (1) दशवैकालिकसूत्र 8/25, 9/3/15, (2) उत्तराध्ययनसूत्र 36/264, (3) सूत्रकृतांग, (4) मत्स्यपुराण 4/13/54.
9. (1) विशेषावश्यक भाष्य, गाथा 1043, 1045, 1046, (2) देवी भागवत 4/13/54.
10. वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर।
11. हिन्दू सभ्यता- डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, पृ. 86.
12. पाणिनी 4/3/32.
13. वही, 4/3/93.
14. वही, 4/2/133.
15. वही, 7/3/2.
16. वही, 4/1/169.
17. वही, 4/1/75.
18. वही, 4/2/31.

19. (1) वही 4/2/172, (2) 130, 4/1/178.
20. देखें - पुरातन पंजाब विच जैनधर्म- रवीन्द्र जैन, पुरुषोत्तम जैन।
21. (1) आवश्यक नि. 351, (2) विशेषावश्यक भाष्य, 1903, (3) आवश्यक चूर्णि 279-280
22. (क) History of Punjab, By Dr. L.M. Joshi, Vol. I.
    (ख) An Introduction to the Indian Religion By Dr. L.M. Joshi & Dr. Harbans Singh.
23. विपाकसूत्र, द्वितीय श्रुतस्कंध, नौवाँ अध्ययन।
24. (क) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र 10/11, (ख) आदित्तजातक, दिव्यावदान में राजधानी का नाम रोरुव है।
25. भगवती 25/3, 3-6.
26. उत्तराध्ययन भावविजय गणि की टीका पृ. म. 18/5, पत्र 380.
27. (क) आवश्यक चूर्णि, (ख) उत्तराध्ययन, नेमिचन्दपत्र 253, (ग) उत्तराध्ययन भावविजय टीका 378-2.
28. आवश्यक चूर्णि 399.
29. उत्तराध्ययन भावविजय कृति 18/84/383.
30. आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ. 221.
31. (1) आवश्यक चूर्णि, पृष्ठ 234, (2) त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र 10/1.
32. (क) आवश्यक चूर्णि, (ख) उत्तराध्ययन भावविजय टीका, पृ. 327.
33. श्रमण भगवान् महावीर-मुनि कल्याणविजय।
34. राजतरंगिणी 3/265.
35. श्री सिंह जी, श्री यशोधर जी, श्री मनोहर जी, श्री सुन्दर जी, श्री सदानंद ऋषि जी, श्री जसवंत ऋषि जी, श्री वर्धमान ऋषि जी, श्री लक्ष्मी ऋषि जी, श्री रिखवा ऋषि जी, श्री सेतु ऋषि जी, श्री हरिविमल जी।
36. नगरकोट वेनती सं. 1488.
37. (क) ओम सं. 30, गच्छे राजकुले सूरि भू (द) (2) भवचन्द्र (1) तिच्छष्यो (5) मलचन्द्राख्य (स्त) (3) पदा (दां) भोज षट पद (2) सिद्ध राजस्तत::-ढड्ग् (4) दडगा दर्जान (ज) ढटक। रल्हं तिस गृ (हिणी) (त) (स्य) या-धर्म-यापिनी। अज निण्ठा सूतो (6) तस्या (जैन) धर्मधर (प) रायाणो ज्योष्ठो-कुडलं को (7) (भ्रा) (त्ता) कनिष्ठ : कुमार मिद्य प्रतिमेंयं (च) (8) जिनऽनुज्ञा कारिता (1)- डॉ. वुल्हर ऐपिग्राफी इण्डिया।
    (ख) वैद्यनाथ पपटोला के शिव मन्दिर में लगी एक खण्डित प्रतिमा की चौकी पर यह लेख दर्ज है -
    ओम् सं. 1296 वर्षो फाल्गुन वदी 5 खौ कीरग्रामे वह्म-क्षेत्र गोत्रोत्पल व्यय, प्रत्राभ्या व्य, दोल्हण आलहणाभ्या स्वकारित श्री भगवान् महावीर जैन नैत्य श्री महावीर जिन बिम्ब आत्म भेदो (र्थे) कारिते। प्रतिष्ठितं च श्री जिनवल्लभसूरि संतानीय रूद्रपल्लीय श्रीमद् भयदेवसूरि शिष्य श्री देवभद्रसूरिभि।

    - डॉ. वुल्हर एपिग्राफी इण्डिया, पृ. 118.